जनवरी-मार्च अंक : 98 2019
October-December ISSN : 0976-0024

महिला
Mahila

# विधि भारती
# Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज ी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

ISSN 0976-0024

प्रधान संपादक
**सन्तोष खन्ना**
संपादक
**डॉ. उषा देव**

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-25/2019 Impact Factor : 5.25

**विधि भारती परिषद्**
बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
**मोबाइल :** 09899651872, 09899651272
**फ़ोन :** 011-27491549, 011-45579335
**E-mail :** vidhibharatiparishad@hotmail.com
**Website :** www.vidhibharatiparishad.in

**'महिला विधि भारती' पत्रिका**

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

**E-mail :** vidhibharatiparishad@hotmail.com

**Website :** www.vidhibharatiparishad.in

**अंक :** अंक 98 (जनवरी-मार्च, 2019)

**प्रधान संपादक :** सन्तोष खन्ना, **संपादक :** डॉ. उषा देव

**बोर्ड ऑफ रेफरीज एवं परामर्श मंडल**

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. न्यायमूर्ति श्री एस.एन. कपूर : पूर्व न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय, पूर्व सदस्य, राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग, नई दिल्ली।
6. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
7. प्रो. (डॉ.) गुरजीत सिंह : संस्थापक वाइस चांसलर, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी एवं न्यायिक अकादमी, असम
8. श्री हरनाम दास टक्कर : पूर्व निदेशक, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली

**प्रदेश प्रभारी**

1. प्रो. देवदत्त शर्मा (उत्तर प्रदेश) 09236003140
2. प्रो. (डॉ.) सुरेंद्र यादव (राजस्थान) 09414442947

**परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना**

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू नूर (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रवेश सक्सेना (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. श्री जी.आर. गुप्ता (सदस्य)
10. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
11. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
12. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
13. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
14. डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम् (सदस्य)
15. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
16. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

**शुल्क दरें**

वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
आजीवन शुल्क 5,000/-- रुपए
संस्थागत वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए



# अंक 98 में

1. दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की संवैधानिकता को उच्चतम न्यायालय में चुनौती / **संपादकीय** -- 5
2. समान नागरिक संहिता : एक देश, एक क़ानून / **डॉ. सुनीता श्रीवास्तव** -- 9
3. पारिवारिक क़ानून एवं पारिवारिक मूल्य / **डॉ. उषा देव** -- 14
4. महिला सशक्तिकरण और क़ानून / **सन्तोष खन्ना** -- 22
5. भारत में वैवाहिक समस्याएँ और उनके विधिक निदान / **सुमन कुमारी** -- 31
6. मुस्लिम वैयक्तिक विधि में तीन तलाक़ तथा संविधान से प्रदत्त अधिकारों का संरक्षण : एक अवलोकन / **प्रो. (डॉ) सुदर्शन वर्मा एवं नतीश कुमार चतुर्वेदी** -- 37
7. भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क और न्यायालय / **डॉ. जनार्दन कुमार तिवारी** -- 45
8. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 एवं न्यायिक पृथकरण : एक अध्ययन / **डॉ. निशा केवलिया शर्मा** -- 58
9. विवाह क़ानून में क्रूरता का अर्थ / **सोनल साहू** -- 66
10. तीन तलाक़ और मुस्लिम महिलाएँ 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी' / **डॉ. रहीसा तरन्नुम** -- 73
11. आईपीसी की धारा 497 और उच्चतम न्यायालय / **देवनारायण मीणा** -- 81
12. आई.पी.सी. 498-ए और उच्चतम न्यायालय : वरदान और अभिशाप / **संतोष बंसल** -- 89
13. पारिवारिक क़ानून एवं पारिवारिक मूल्य विषय पर संगोष्ठी (रिपोर्ट) / **दिनेश दिनकर** -- 99
14. Implication of Decriminalisation of Adultery in India / **Dr. Parmod Malik** -- 109
15. दिशा भ्रमित संस्कृति से साक्षात्कार करवाता है संग्रह 'समय का सच' / **डॉ. साधना गुप्ता** -- 113
16. Need for a Seclar : Adoption Law / **Smt. Niti Nipuna Saxena** -- 118
17. दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन संबंधी उच्चतम न्यायालय का फ़ैसला / **डॉ. सन्तोष खन्ना** -- 127
17. खंड-खंड समाज का 'विखंडित राग' (पुस्तक समीक्षा) / **सन्तोष खन्ना)** -- 131

## लेखक मंडल

**Dr. S.S. Das :** Assistant Professor, Centre For Juridical Studies, Dibrugarh University- 786004, Assam, India, **Mobile :** 91-9435594172

**Kirtika Singh :** Law Scholar, SOL, UPES, Dehradun, U.K.

**प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी :** सदस्य, केंद्रीय हिंदी समिति, भारत सरकार, 1764, औट्रम लाइंस, डॉ मुखर्जी नगर (किंग्ज्वे कैंप), दिल्ली-110009





# दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की संवैधानिकता को उच्चतम न्यायालय में चुनौती

हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की वैधानिकता को उच्चतम न्यायालय में एक बार पुनः चुनौती दी गई है। इस बार गुज़रात नेशनल लॉ यूनीवर्सिटी के दो छात्रों उजस्व पाठक और मयंक गुप्ता ने लोकहित वाद दाख़िल कर कहा है कि क़ानून की यह धारा स्पष्ट रूप से पितृसत्तात्मक रूप से महिलाओं के अधिकारों के विरुद्ध है और यह क़ानून अंग्रेजी क़ानून पर आधारित है जो महिलाओं को 'वस्तु' से अधिक महत्त्व नहीं देता, जिसका अभिप्राय यह है कि पत्नी पति की संपत्ति है। इसलिए यह धारा संविधान के अनुच्छेद 15(1) के विरुद्ध है। उच्चतम न्यायालय में इस लोकहित वाद को अधिवक्ता संजय हेगड़े ने प्रस्तुत किया है। संजय हेगड़े ने इस मामले को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि यह क़ानून न केवल निजी और व्यक्तिगत स्वायत्तता और व्यक्तिगत गरिमा का हनन करता है जो कि संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रत्याभूत है बल्कि यह महिलाओं पर अनुचित भार डालता है। इसलिए यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 15(1) का उल्लंघन करती है।

यह लोकहित वाद भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रंजन गगोई की एक दो-सरस्यीय पीठ के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। इस पर सुनवाई करते हुए भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रंजन गगोई ने इस मामले को एक तीन-सदस्यीय न्यायपीठ को सुनवाई के लिए भेज दिया है।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 की संवैधानिकता को यह पहली बार चुनौती नहीं दी गई है बल्कि इससे पहले भी देश के उच्च न्यायालयों में इस पर विचार किया जा चुका है और अंततः उच्चतम न्यायालय ने इसे संवैधानिक ठहराया था।

**टी. सरिता बनाम वेंकट सुब्बैया**[1] के वाद में यह निर्णय दिया गया था कि धारा 9 भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15(1) का उल्लंघन होने के कारण अवैध व शून्य है। फ़ैसले में कहा गया कि दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री देने से अभिप्राय यह है कि अनिच्छुक पक्षकार को डिक्रीधारी पक्षकार के साथ उसकी मर्जी के विरुद्ध संभोग के लिए विवश करना है। यह मानव गरिमा का हनन है।

**दिल्ली उच्च न्यायालय ने हरविंदर कौन बनाम हरमंदर सिंह**[2] के वाद में फ़ैसला दिया था कि दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन संबंधी हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15(1) का अतिक्रमण नहीं करती है क्योंकि दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री ज़बरदस्ती संभोग के लिए नहीं बल्कि डिक्री में साहचर्य (cohabition) का आदेश रहता है। साहचर्य से अभिप्रायः यह है कि पति-पत्नी का साथ-साथ रहना ताकि उनमें नजदीकियाँ बने और उससे विवाह जैसी पवित्र संस्था को टूटने से बचाया जा सके जो न केवल पति-पत्नी का हित साधक है बल्कि उनके बच्चों के कल्याण में भी है।

आंध्र प्रदेश और दिल्ली उच्च न्यायालयों के सर्वथा परस्पर विपरीत निर्णयों के बाद जब उच्चतम न्यायालय में **सरोज रानी बनाम सुदर्शन कुमार**[3] का मुकदमा आया तो उच्चतम न्यायालय ने आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय के विपरीत फ़ैसला देते हुए इसे संविधान की कसौटी पर उचित और सामयिक मानते हुए कहा कि यह धारा असंवैधानिक नहीं है क्योंकि यह विवाह को जोड़ने का प्रयास है। तब से अब तक समाज की सोच में और उच्चतम न्यायालय के कई फ़ैसलों में आए निर्णयों के संदर्भ में इस विषय पर पुनः विचार करना समीचीन होगा। शायद इसलिए ही अब उच्चतम न्यायालय ने इस विषय पर पुनः विचारण के लिए इसे स्वीकार कर उसे तीन-सदस्यीय न्यायपीठ को सौंप दिया है।

वास्तव में दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन जैसा प्रावधान भारतीय अवधारणा का हिस्सा कभी नहीं रहा अपितु यह ''मूलतः जोविश विधि (Jews Law) की देन है। जेविश विधि की इस धारणा को इंग्लिश कॉमन लॉ ने ग्रहण किया और इंग्लिश कॉमन लॉ से यह प्रावधान भारतीय विधि में लिया गया है।''[4] यहाँ यह देख लेना समीचीन होगा कि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 में क्या प्रावधान किया गया है --

धारा 9 : दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन

जबकि पति या पत्नी ने अपने को दूसरे के साहचर्य से किसी युक्तियुक्त प्रति हेतु के बिना प्रत्याहृत कर लिया हो, तब व्यथित पक्षकार दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए ज़िला न्यायालय में अर्ज़ी द्वारा आवेदन कर सकेगा और न्यायालय ऐसी अर्ज़ी में किए गए कथनों के सत्य के बारे में तथा इस बात के बारे में कि इसके लिए कोई वैध आधार नहीं है कि आवेदन क्यों न मंजूर किया जाए, अपना समाधान होने पर दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन डिक्री की कर सकेगा।

दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन का प्रावधान केवल हिंदू विवाह अधिनियम में ही नहीं है बल्कि अन्य धर्मों के लोगों के लिए भी है। विभिन्न स्वीय विधियों में इस प्रावधान



को शामिल किया गया है। विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 22, भारतीय तलाक़ अधिनियम, 1869 में धारा 32, पारसी विवाह और तलाक़ अधिनियम, 1936 में धारा 36 में इस प्रावधान को सम्मिलित किया गया है।

दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के प्रावधान में सामान्यतया निम्न कारकों को सम्मिलित किया गया है --

1. यदि विवाह के पक्षकारों में कोई पक्षकार (पति अथवा पत्नी) बिना युक्तियुक्त कारण से दूसरे पक्षकार के साहचर्य से विलग हो गया है।
2. न्यायालय अर्ज़ी में दिए कथनों की सत्यता के बारे में संतुष्ट हो गया हो।
3. अर्ज़ी को स्वीकार न करने का उचित आधार नहीं है। दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री न्यायालय द्वारा पारित की जा सकती है।

वास्तव में दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन का प्रावधान पति-पत्नी दोनों पर लागू होता है परंतु अधिकांशतया पुरुषों की ओर से इस धारा के अंतर्गत अधिक मुकदमे किए गए हैं जिससे यह अवधारणा बनी कि यह धारा महिलाओं के अधिकारों के विरुद्ध है। वास्तव में प्राचीन भारतीय विवाह विधि में पति-पत्नी के कर्त्तव्यों का विस्तार से वर्णन है परंतु इन कर्त्तव्यों को न किए जाने की स्थिति में किसी उपचार की व्यवस्था नहीं थी किंतु जब भारत में अंग्रेजी काल में उनके द्वारा बनाए क़ानून लागू किए गए तो उसमें दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन का क़ानून लागू किया गया। तत्कालीन समय में सोच दूसरे प्रकार की थी जिसमें समाज में पत्नी को एक सांपत्तिक अधिकार समझा जाता था और उसे पति के साथ हर अवस्था में रहना होता था। इस संबंध में पारस दीवान का यह कथन दृष्टव्य है। ''पत्नी के पति के साथ रहने का अधिकार वैसा ही था जैसे एक गाय मालिक के बाड़े को छोड़ कर भाग जाती है तो उसे पुनः उसी बाड़े में ला कर बाँध दिया जाता है।'' समय के बदलाव के साथ इस धारणा में भी अब बदलाव आ चुका है। हाल में ही उच्चतम न्यायालय ने धारा 497 को असंवैधानिक ठहराते हुए कहा था कि ''पति पत्नी का मालिक नहीं है और पत्नी उसकी संपत्ति नहीं है तथा किसी महिला की व्यक्तिगत गरिमा और समता पर विपरीत प्रभाव डालने वाला कोई भी क़ानून संविधान की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता।''

दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए डिक्री तभी जारी की जाती है जब यह सिद्ध हो जाए कि एक पक्षकार ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण से दूसरे पक्षकार के साहचर्य से स्वयं को विलग कर लिया है। बदलती सोच के साथ 'युक्तियुक्त कारण' के संबंध में भी सोच बदली है। बहुत पहले नौकरी के कारण यदि पत्नी को घर से दूर रहना पड़ता था तो उसे भी बिना युक्तियुक्त कारण के साहचर्य से विलग हो जाना माना जाता

था जैसाकि **तीरथ कौर बनाम कृपा सिंह**[5] के मामले में न्यायालय ने दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री देते हुए न्यायाधीश ग्रोवर ने कहा था कि संसार की किसी भी विधि के अंतर्गत पत्नी अपने पति के साहचर्य से अपने को विलग नहीं कर सकती है। **गया बनाम भगवती के मामले**[6] में न्यायालय ने कहा था कि हिंदू समाज की सामान्य मान्यताओं के अनुसार पत्नी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने दांपत्य जीवन के कर्त्तव्यों का निर्वहन अपने पति के घर में उसके साथ रह कर करे। किंतु समय के साथ न्यायालयों की भी इस सोच में परिवर्तन आया कि साहचर्य का अर्थ यह नहीं है कि पति-पत्नी हर समय शारीरिक साहचर्य बना कर रखें। यदि पत्नी किसी अलग स्थान पर नौकरी करती है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि पत्नी ने पति के साहचर्य से स्वयं को विलग कर लिया है। इसलिए देखना यह होगा कि 'युक्तियुक्त कारण' से अभिप्राय क्या है? युक्तियुक्त कारण हर मामले में सामान्यतया तथ्यों पर निर्भर करेगा। यथा **कांतीमेथी बनाम परमेश्वर**[7] के मामले में न्यायालय ने पत्नी का इस आधार पर पति का घर छोड़ना कि पति के घर पर पति के माता-पिता निवास करते हैं युक्तियुक्त आधार नहीं माना। एक पक्षकार का दूसरे पक्षकार के साथ गंभीर अभद्र व्यवहार, मद्यपान की लत, अप्राकृतिक मैथुन, मानसिकता विकृतता, क्रूरता अथवा अस्तित्व पर लाँछन लगाना आदि ऐसे कारक हो सकते हैं जिन्हें युक्तियुक्त माना जा सकता है।

वैसे भी दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री पारित हो जाने पर भी कोई उसे मनवाने की जबर्दस्ती नहीं कर सकता। यदि एक वर्ष तक इस डिक्री का अनुपालन नहीं होता तो पक्षकार विवाह भंग के लिए अर्ज़ी दे सकता है।

❑

**संदर्भ**


1. ए.आई.आर. 1983, आंध्र प्रदेश, 356
2. ए.आई.आर. 1984, दिल्ली, 66
3. ए.आई.आर. 1984, एस.सी. 1562
4. हिंदू विधि, डॉ. आर.के. सिंह, इलाहाबाद लॉ एजेंसी, पब्लिकेशंस, 2007, पृ. 71
5. ए.आई.आर. 1964, पंजाब, 28




डॉ. सुनीता श्रीवास्तव

# समान नागरिक संहिता : एक देश, एक क़ानून

समान नागरिक क़ानून से अभिप्राय क़ानूनों के ऐसे समूह से है जो देश के समस्त नागरिकों (चाहे वह किसी धर्म या क्षेत्र से संबंधित हों) पर लागू होता है। यह किसी भी धर्म, संप्रदाय या जाति के सभी निजी क़ानूनों से ऊपर होता है। इस क़ानून की प्रकृति सार्वजनिक क़ानूनों की प्रकृति से अलग है।

इन क़ानूनों में विवाह, तलाक़, गुज़ारा-भत्ता, गोद लेने, कस्टडी, ग्रहण और उत्तराधिकार और संरक्षण के क़ानूनों को शामिल किया गया है। समान नागरिक संहिता को महिला-पुरुष दोनों के लिए एक समान और समतावादी क़ानून के रूप में स्वीकार किया जाता है।

**समान नागरिक संहिता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :** समान नागरिक संहिता के बारे में एक बहस की शुरुआत औपनिवेशिक काल के दौरान तब शुरू हुई थी जब 1840 में लेक्स लोकी रिपोर्ट ने भारतीय क़ानूनों के संहिताकरण और एकरूपता की आवश्यकता का प्रस्ताव रखा था, लेकिन तब यह न सिर्फ़ मुसलमानों बल्कि हिंदुओं के भी विरोध के कारण लागू नहीं हो सका। यह क़ानून अपराधों, सबूतों और अनुबंध से संबधित था, लेकिन इसमें यह सुझाव दिया गया था कि इस तरह के संहिताकरण के दायरे में हिंदुओं और मुसलमानों के निजी क़ानूनों को नहीं रखा जाएगा।

अंग्रेज़ों ने उन सभी मामलों के बारे में योजना बनाई जिनके द्वारा विभिन्न धार्मिक ग्रंथों और रीति-रिवाज़ों को नियंत्रित किया जा सकता है। उस अवधि के दौरान निजी क़ानूनों को विरासत, उत्तराधिकार, विवाह और धार्मिक अनुष्ठानों से संबंधित निर्णय लेने का अधिकार था। हिंदू क़ानून महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले भेदभाव पर आधारित थे। हिंदू महिलाओं को तलाक़, पुनर्विवाह और विरासत की अनुमति नहीं थी। ईश्वर चंद्र विद्यासागर और कुछ ब्रिटिश समाज सुधारकों ने विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से सुधारों की वकालत की और इस तरह के रीति-रिवाज़ों तथा प्रथाओं को ग़ैर-क़ानूनी घोषित करवाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके प्रयासों की वजह से ही 1856 में हिंदू विधवा पुनर्विवाह पारित हुआ।

उसके बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा 1923 का विवाहित महिलाओं के लिए संपत्ति अधिनियम और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1928 को पारित किया गया था, जिसने हिंदू महिलाओं को संपत्ति के अधिकार की अनुमति प्रदान की।

1923 में हिंदू महिला संपत्ति अधिनियम को क़ानूनी अधिकार बनाया गया। इस अधिनियम को देशमुख बिल के रूप में भी जाना जाता है। इस अधिनियम को बी.एन राव कमेटी ने प्रस्तावित किया था जिसने समान हिंदू क़ानून की आवश्यकता पर बल दिया। समिति ने सिफ़ारिश करते हुए कहा था कि समान नागरिक संहिता समय की ज़रूरत है और इस क़ानून से महिलाओं को समान अधिकार मिलेंगे लेकिन इसका मुख्य लक्ष्य उन हिंदू क़ानूनों में सुधार करना था जो हिदू ग्रंथों पर आधारित थे।

## आज़ादी के बाद समान नागरिक संहिता

**1. एक हिंदू पर्सनल लॉ के रूप में समान नागरिक संहिता :** आज़ादी के बाद भारतीय संसद में हिंदू विधेयक पेश किया गया। इस पर संसद के विभिन्न सत्रों में 1947-1954 के बीच चर्चा की गई थी। समान नागरिक संहिता के बारे में संसद में मिन्न-मिन्न राय रखने वाले लोग थे। नेहरू और अंबेडकर ने इसका दृढ़ता से समर्थन किया था, लेकिन समाज के रूढ़िवादी तबके ने इस पर आपत्ति जताई और अपनी आपत्तियों को मुख्य रूप से बनाए रखा तथा कहा कि यह हिंदू नागरिक संहिता धार्मिक शिक्षाओं के ख़िलाफ़ है।

एक क़ानून मंत्री के रूप में अंबेडकर पर इस बिल का ब्यौरा तैयार करने की ज़िम्मेदारी थी। राजेंद्र प्रसाद और सरदार वल्लभ भाई पटेल सहित संसद के कई वरिष्ठ सदस्यों ने इस बिल का विरोध किया। कट्टरपंथी और परंपरावादी जो हिंदू कोड बिल के ख़िलाफ़ थे, उन्होंने समान नागरिक संहिता की माँग की, लेकिन उनका प्रस्ताव काफ़ी देरी से आया था तब तक यह बिल संसद में क़ानूनी रूप धारण करने के लिए तैयार हो चुका था। आख़िरकार, 1955 में यह विधेयक अपने निम्न संस्करण में पारित हो गया। इस विधेयक (बिल) को चार क़ानूनों में विभाजित किया गया था -- हिंदू विवाह अधिनियम, उत्तराधिकार अधिनियम, अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम और प्रदत्त और रखरखाव अधिनियम।

संसद ने एक निर्णय लिया गया कि समान नागरिक संहिता का विचार संविधान में शामिल किया जाएगा। इसलिए अनुच्छेद 44 को संविधान में जोड़ा गया, जो यह बताता है कि ''भारत के किसी भी राज्य-क्षेत्र में समान नागरिक संहिता लागू करने की ज़िम्मेदारी केंद्र सरकार की होगी। दूसरी तरफ़ मुस्लिम समुदाय के लिए एक अन्य क़ानून को संचालित किया गया था।

**2. भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ :** 1937 में मुस्लिम पर्सनल लॉ एक्ट की स्थापना की गई थी। यह व्यक्तिगत मामलों में भारत में रहने वाले सभी मुस्लिमों को शरियत के इस्लामी कोड क़ानून के तहत अधिकार प्रदान करता है। इस अधिनियम के प्रावधानों के



अनुसार 1973 में ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड की स्थापना की गई थी। ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड (ए.आई.एम.पी.एल.बी.) मूल रूप से शरीया क़ानून का समर्थन करता है और कोई भी क़ानून जो इसके मूल सिद्धांतों में हस्तक्षेप करना चाहता है उससे स्वयं की रक्षा करता है।

**शरीया क़ानून क्या है? :** शरीया एक धार्मिक क़ानून है जिसे इस्लामी आस्था के सदस्यों द्वारा संचालित किया जाता है। यह इस्लाम के धार्मिक उपदेशों, विशेष रूप से कुरान और हदीस से लिया गया है। शरिया शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के शरीअ से हुई है जिसका अर्थ है एक धार्मिक क़ानून का नैतिक रूप। यह धार्मिक भविष्यवाणी से निकला है और मानव निर्मित क़ानूनों का विरोध करता है।

**शाहबानो प्रकरण का महत्त्व :** शाहबानो प्रकरण न्याय और समानता के संदर्भ में मुस्लिम महिलाओं के लिए एक मील का पत्थर था। इसने भारत में पर्सनल लॉ पर एक नई राजनीतिक बहस को जन्म दिया। शाहबानो ने दंड प्रक्रिया संहिता (सी.आर.पी.सी.) की धारा 125 के अंतर्गत अपने पति से भरण-पोषण भत्ता दिए जाने की माँग की। न्यायालय ने शाहबानो के पक्ष में फ़ैसला दिया। यह इस तरह का कोई पहला मामला नहीं था जब मुस्लिम महिला को अपने पति से गुज़ारा भत्ता मिला हो लेकिन इसे मुस्लिम समाज के रूढ़िवादी लोगों ने इस्लाम पर हमला माना। शाहबानो के पति ने इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ अपील की और अंततः यह मामला उच्चतम न्यायालय पहुँचा। शाहबानो के पक्ष में आए न्यायालय के फ़ैसले का भारी विरोध हुआ। आख़िरकार राजीव गांधी सरकार ने मुस्लिम धर्मगुरुओं के दबाव में आकर मुस्लिम महिला अधिनियम, 1986 पारित कर दिया। इस अधिनियम के जरिए शाहबानो के पक्ष में आया न्यायालय का फ़ैसला भी पलट दिया गया। इस अधिनियम का सबसे विवादास्पद प्रावधान यह था कि एक मुस्लिम महिला के पास तलाक़ के बाद इद्दत की अवधि (लगभग 3 महीने) तक भरण-पोषण का ख़र्चा माँगने का अधिकार है, बाद की ज़िम्मेदारी महिला के रिश्तेदारों या वक्फ बोर्ड की होगी।

यह अधिनियम भेदभावपूर्ण माना जाता था क्योंकि यह क़ानून मुस्लिम महिलाओं को बुनियादी मेंटीनेंस जैसी सुविधाएँ जो धर्मनिरपेक्ष क़ानून के तहत अन्य धर्मों की महिलाओं को मिलती हैं, नहीं देता है। मुंबई के एक वकील पलाविया एग्नेस का कहना है कि इस क़ानून में उदार व्याख्या की कमी हैं। इस क़ानून की धारा 3(1) के खंड-ए के अनुसार एक तलाक़शुदा औरत अपने पूर्व पति से इद्दत की अवधि के दौरान एक उचित और निष्पक्ष मेंटिनेंस पाने की हक़दार होगी।

हालाँकि 1986 में आए अधिनियम ने उम्मीद से बेहतर काम किया लेकिन अभी भी कई लोगों के लिए मुस्लिम महिलाओं के तलाक़ का मामला अन्य की तुलना में एक चिंता का विषय बना हुआ है।

**हमें क्यों एक समान नागरिक संहिता के आवश्यकता है?**

समान नागरिक संहिता की आवश्यकता का मूल अर्थ बिना किसी समुदाय की परवाह किए इन सभी निजी क़ानूनों को एक धर्मनिरपेक्ष क़ानूनों में तब्दील करना जो भारत के हर नागरिक पर लागू होता है। समान नागरिक संहिता के आधार की अभी भी ठीक तरीक़े से व्याख्या नहीं की जा रही है। इसमें निजी क़ानूनों का सबसे आधुनिक और प्रगतिशील संस्करण भी शामिल होगा और यह उन क़ानूनों का स्थान लेगा जिनका कोई मतलब नहीं है।

**समान नागरिक संहिता की संवैधानिक वैधता**

1. अनुच्छेद 14 भारत के किसी भी राज्य क्षेत्र में रहने वाले हर व्यक्ति के क़ानूनों के समान संरक्षण के लिए समानता प्रदान करता है। यह किसी भी धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं करता है।
2. अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर भी होने वाले भेदभाव पर प्रतिबंध लगाता है।
3. अनुच्छेद 16 लोक नियोजन के विषय पर अवसर की समानता प्रदान कराता है।
4. अनुच्छेद 17 भेद-भाव (छुआछूत) को समाप्त करता है।
5. अनुच्छेद 44 कहता है कि भारत के किसी भी राज्यक्षेत्र में समान नागरिक संहिता लागू करने की ज़िम्मेदारी केंद्र सरकार की होगी।

समान नागरिक संहिता की बहस भारतीय संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता और धर्म की स्वतंत्रता को लेकर है। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य है। इसका मतलब यह है कि इस देश का कोई धर्म नहीं है। इसलिए अगर इस आधार पर देखा जाए तो समान नागरिक संहिता के ख़िलाफ़ किसी भी धर्म से आने वाली आपत्ति को ग़ैर-क़ानूनी घोषित किया जा सकता है। एक धर्मनिरपेक्ष देश में धर्म के आधार पर किसी के ख़िलाफ़ कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है।

भारतीय संविधान मजबूती से लैंगिक समानता का पक्ष होता है। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 44 में सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता की परिकल्पना की गई है और कहा गया है कि भारत के किसी भी राज्य क्षेत्र में समान नागरिक संहिता लागू करने की ज़िम्मेदारी केंद्र सस्कार की होगी। हालाँकि संविधान बनने के 70 साल बाद भी आदर्श समान नागरिक संहिता की अभी तक हासिल नहीं किया जा सका।

**निष्कर्ष :** कुल मिलाकर यही कहना समीचीन है कि समान नागरिक संहिता न्याय की सर्वोच्चता, न्याय के समक्ष समता, धर्मनिरपेक्षता, नारी सशक्तिकरण और राष्ट्र की एकता की वृद्धि में सहायक है। वस्तुतः यह मानवीय गरिमा को सम्मानित करने का एक जरिया है।

❑



**संदर्भ**

1. डॉ. बसंतीलाल बाबेल, भारत का संविधान
2. डॉ. जयनारायण पांडेय, भारत का संविधान
3. डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी, दंड प्रक्रिया संहिता
4. डॉ. सुधा अवस्थी, जनहित याचिका
5. मो. अहमद खान बनाम शाहबानो बेगम (ए.आई.आर. 1985 एस.सी.)

**डॉ. सुनीता श्रीवास्तव :** प्राध्यापक, सेज विश्वविद्यालय, इंदौर

डॉ. उषा देव

# पारिवारिक क़ानून एवं पारिवारिक मूल्य

'परिवार' शब्द 'परि' उपसर्ग तथा 'वार' इन दो शब्दों से निष्पन्न हुआ है। 'परि' उपसर्ग समंततो भाव का द्योतक है अर्थात् अच्छी प्रकार और 'वार' का अर्थ है -- रोक, घिरा हुआ, द्वार। तो इस प्रकार परिवार शब्द का अर्थ हुआ -- अपने कहे जाने वाले व्यक्तियों का समूह।

सुदूर अनादि काल में जब मानव ने पृथ्वी रूपी ग्रह पर आँख खोली तो वह नवजात शिशु की भाँति पेट की ज्वाला से सर्वप्रथम रू-ब-रू हुआ होगा। कह नहीं सकते कि उसने पहले किसी निरीह प्राणी, पशु, पक्षी को मार कर या वनस्पति को कच्चा ही खाया होगा। फिर विधिवशत् स्वयं पत्थर से घायल होकर उसने कुछ सोचा और पत्थर को अपने भोज्य पशु-पक्षी को मारने के लिए प्रयोग किया होगा। अगला क़दम उठाया और तराशे पत्थर को अपना हथियार बनाया।

निश्चित रूप से कुत्ता उसका पहला साथी बना। कुत्तों के झुंड की मदद से शिकार करना सरल हो गया। आरंभ में वह झुंड बना कर रहा होगा। दुधारू पशु जैसे गाय, बकरी को पालतू बनाया। शायद उन्हें घास-पत्ते खाते देख स्वयं भी कई प्रकार की वनस्पतियों का दैनिक उपयोग कर उठा होगा। अग्नि की खोज से जीवन कुछ सरल हुआ। वह बनैले पशुओं से अपनी सुरक्षा करने में सफल हो सका। यह भी एक शाश्वत सत्य है कि पेट की ज्वाला शांत हो जाने पर शारीरिक भूख का उदय होता है। प्रारंभ में स्वच्छंद लैंगिक संबंध का प्रचलन रहा होगा।

यह भी सच है कि जब जीवन सरल हो जाता है और मानव को सोचने, समझने एवं विवेकशीलता की, जो अन्य जीवधारियों से अलग अनुपम शक्ति मिली है; उसका प्रयोग कर उठता है। तो उसने देखा कि बच्चे की माँ तो जन्म देने पर निश्चित हो गई पर पिता? (शायद पशुओं के व्यवहार से या फिर धरती पर जिस-जिस फल का बीज गिरा तथा उसकी जो-जो पैदावार हुई अर्थात् कड़वे फल के बीज से वैसा ही पेड़ और फल तथा मीठे फल के बीज से वैसा ही पेड़ और फल)। बस उस पल परिवार अर्थात् अच्छी



प्रकार व्यक्ति या समूह से घिरा हुआ की अवधारणा ने जड़ें जमा लीं। वह पशु पालक, खेतहर बना। खेती की सुविधा के लिए नदियों के आसपास रहने लगा।

पहले मानव सांकेतिक, ध्वनियाँ, चिह्नों और फिर स्थिर वर्णों का प्रयोग कर उठा। वस्तुतः भाषा का विकास एक लंबी जीवन-यात्रा की अमर कहानी है।

विकास के इस दौर में जब मानव ने सामूहिक जीवन-यापन करना शुरू किया तो निश्चित रूप से आपसी मतभेदों या विवादों से बचने के लिए उसने कुछ नियम या आचरणों को मान्यता दी होगी। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन नियमों के पालन को रूढ़ि, परंपरा या प्रथा नाम दिया जाने लगा। इस प्रकार पारिवारिक क़ानून मौखिक रूप से कहे-सुने जाते होंगे। यह भी हो सकता है कि झुंड का या फिर परिवार का मुखिया सज़ा भी देता होगा।

भारतीय सभ्यता दुनिया की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है और वेद भारतीय वाङ्मय के सर्वाधिक प्राचीन एवं अमूल्य निधि है। वेद पहले श्रुति रूप अर्थात् गुरु से शिष्य सुन कर ही ज्ञान प्राप्त करता था। लेखन कला के उद्भव से वे ग्रंथ रूप (आज भी अजायब घरों में भोज-पत्रों पर लिखित ग्रंथ सुरक्षित हैं) में आए और फिर अनुलेखन से उनकी प्रतिलिपियाँ तैयार होने लगीं।

हमारे देश की एक अन्य विशेषता यह रही कि प्राचीन काल में धर्म, विधि, नैतिकता इत्यादि में कोई अंतर नहीं माना जाता था और वे सब मिल कर धर्म कहलाते थे। जिसे आज हम क़ानून या विधि कहते हैं; उसे ही वैदिक काल में धर्म संज्ञा दी जाती थी। मनु स्मृति के अनुसार वेद, स्मृति, सदाचार एवं जो अपने को तुष्टिकरण हो -- ये चार धर्म के स्पष्ट लक्षण माने गए थे। धर्म से तात्पर्य है धारण करने योग्य गुण, वस्तु अथवा कार्य।

हिंदू विधि की उत्पत्ति किस काल में हुई, इस बारे में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। वैसे विधि का कार्य है बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करना। हिंदू धर्म के अनुयायी अपनी विधि को दैवीय विधि मानते हैं। दैवीय विधि में किसी को हस्तक्षेप या परिवर्तन करने का अधिकार नहीं था। धर्म का संबंध केवल मनुष्य के सामाजिक जीवन तक ही नहीं माना जाता वरन् वह उसके व्यक्तिगत आचार, व्यवहार तथा पारलौकिक जीवन को भी अपना विषय-वस्तु बनाता है। यद्यपि आधुनिक युग में विधि का अर्थ नागरिक विधि अर्थात् मनुष्य के सामाजिक संबंधों और आचरणों को अपना क्षेत्र बनाता है। यही कारण है कि विधि की अनुशास्तियाँ भी सांसारिक हैं। उदाहरणस्वरूप आधुनिक विधि में चोरी करना अपराध है, जो कोई इसे करेगा उसे कारावास का दंड दिया जाएगा जबकि प्राचीन हिंदू विधि के अनुसार चोरी करना एक अपराध एवं पाप -- दोनों था और इसके लिए सांसारिक दंड के अतिरिक्त चोर को परलोक में नरक यातना आदि का दंड भी भोगना पड़ेगा तथा इससे छुटकारा पाने के लिए प्रायश्चित करना आवश्यक था।

हिंदू विधि के प्राचीनतम ग्रंथों को स्मृतियाँ कहा गया है। ये पद्य में मुख्य-मुख्य

स्मृतियाँ हैं -- मनु स्मृति, याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति और कात्यायन स्मृति। मनु के अनुसार दंड ही ऐसा साधन है जो क़ानून की एवं हर व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा कर सकता है। मनु स्मृति में राजा को अपने नियम रूढ़िगत प्रथाओं पर आधारित करने को कहा है। नारद स्मृति में भी कहा है 'व्यवहारो हि बलवान् धर्मस्तेनावहीयेत् अर्थात् रूढ़ियों या लोकनीति, धर्मशास्त्रीय विधि को निष्प्रभ कर देगी। यही नहीं, याज्ञवल्क्य के अनुसार जब किसी देश को युद्ध में परास्त कर भी दिया जाए तो भी उसकी रूढ़ियों और प्रथाओं को वही सम्मान प्रदान करना चाहिए जो उनको पहले से वहाँ प्राप्त था।

प्राचीन विधि के जो ग्रंथ गद्य में हैं उन्हें धर्म सूत्र कहा जाता है। आपस्तंब, वशिष्ठ, विष्णु एवं हरित। बौधायन ने अपने धर्म सूत्र में विधि के अनेक विषयों जैसे विवाह, दत्तक दाय भाग आदिपर लिखा है।

याज्ञवल्क्य स्मृति की विशेषता यह है कि उसने राजा के दैविक अधिकारों की बात नहीं की वरन् उसे भी क़ानून के अधीनस्थ बताया है। वे स्त्रियों और शूद्रों के संबंध में उदारवादी हैं। वे स्त्रियों को दाय भाग देने का समर्थन करते हैं।

नारद उन्नतशील विचार प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने विशेष स्थितियों में स्त्री को अपने पति को छोड़ कर दूसरा विवाह करने का अधिकार भी दिया है। बृहस्पति ने विधवा को ही पति की संपत्ति का अधिकारी माना है। उन्होंने सिविल न्यायालय और आपराधिक में साफ़-साफ़ अंतर बताया है। पहला अर्थ मूल और दूसरे को हिंसा मूल बताया है। गवाहों की जाँच, जिरह और पुनः जाँच का प्रावधान बृहस्पति से पूर्व किसी भी स्मृतिकार ने नहीं किया। वसीयत विधि से संबंधित प्रावधान हमें कात्यायन स्मृति में मिलते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर कृत मिताक्षरा सबसे मान्य है। इसमें प्रायः विधि के समस्त महत्त्वपूर्ण प्रकरणों जैसे विवाह, दाय भाग, दत्तक आदि पर स्पष्ट, सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप से मंतव्य प्रस्तुत किए गए हैं।

ऋग्वेद के विवाह सूत्र (मंडल 10, सूक्त 85) में सविता की पुत्री सूर्या सावित्री का पूषा से विवाह से संबंधित मंत्र हैं। इसी सूक्त के मंत्रों में वधू को पतिगृह की रानी, अपनी सास-ससुर और ननद की स्वामिनी बनने का आशीर्वाद है। पति-पत्नी के हृदय मिले रहे -- ''समापौ हृदयानि नौ'' -- यह कह कर प्रण लिया गया। देखा जाए तो इससे पूर्व शर्तों पर विवाह होते थे जैसे दुष्यंत-शकुंतला, सीता-राम, शांतनु-सत्यवती, अर्जुन-द्रौपदी आदि। अब विवाह एक संस्कार माना जाने लगा और इस प्रकार एक नई मर्यादा का सूत्रपात हुआ।

यद्यपि श्रुति एवं स्मृति हिंदू विधि के प्रारंभिक स्रोत हैं लेकिन भाष्यकारों एवं निबंधकारों (काल 700 ई.पू. से 1700 ई.) ने समकालीन सामाजिक व्यवस्था एवं आवश्यकताओं को देखते हुए उनकी व्याख्या की। यही कारण है कि न्यायालयों ने स्मृतियों के मतों में विभिन्नता की स्थिति में भाष्यकारों के मतों को मान्यता दी।



नंद पंडित द्वारा रचित 'दत्तक मीमांसा' और कुबेर पंडित रचित 'दत्तक चंद्रिका' दत्तक (गोद लेना और देना) पर प्रामाणिक कृतियाँ हैं। कमलाकर भट्ट द्वारा रचित 'निर्णय सिंधु' में उत्तराधिकार के सिद्धांतों पर प्रकाश डाला गया है। जगन्नाथ द्वारा रचित और कोलब्रुक द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में अनुवादित ग्रंथ, जिसे जगन्नाथ या कोलब्रुक के निबंध के नाम से जाना जाता है, में ऋण की वसूली, निक्षेप का क्रय-विक्रय, भागीदारी, दान, पारिश्रमिक का भुगतान, क्रय-विक्रय का विखंडन, दासता से मुक्ति, स्वामी और सेवक के बीच विवाद, पति-पत्नी के कर्त्तव्य, उत्तराधिकार, विभाजन आदि पर अपने मंतव्य स्पष्ट किए हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि हिंदू कहे जाने वाले (फारस के लोग सिंधु का उच्चारण हिंदू करते थे और सिंधु के पूर्व में रहने वालों को हिंदू कहते थे) भारत के मनीषियों ने पारिवारिक क़ानून के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में अनेक नियमों की श्रुतियों, स्मृतियों और धर्म सूत्रों में व्याख्या की है।

विधिशास्त्र की ऐतिहासिक विचारधारा के प्रवर्तक कार्ल फैड्रिक सैविनी तो विधि के स्रोत के रूप में केवल रूढ़ियों को ही मान्यता प्रदान करते हैं। हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 3(क) के अनुसार रूढ़ि तभी मान्य होगी जब वह दीर्घकाल से चली आ रही हो। इस विषय पर और स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि जो रूढ़ि कम-से-कम सौ साल से चली आ रही है वो तभी प्राचीन कही जाएगी। साथ ही, वह निरंतर प्रचलन में हो और न्याय संगत हो। प्राचीन धर्मशास्त्रों के कथनानुसार रूढ़ियाँ शास्त्र, लोकनीति एवं जनहित के विरोध में न हो। आज भारतीय संविधान एवं संसद द्वारा निर्मित विधि सर्वोच्च मानी जाती है तथा कोई भी प्रथा संसद द्वारा स्वीकृत विधि का स्थान नहीं ले सकती। उदाहरण स्ववरूप हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के लागू होने से पहले बहु-विवाह को मान्यता प्राप्त थी; पर इस अधिनियम के पश्चात् ऐसे विवाह शून्य माने जाने लगे। इसी प्रकार उत्तराधिकार नियम, 1956, हिंदू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 के अंतर्गत उन लोगों का उल्लेख किया गया है जो हिंदू माने गए। हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 2 के अंतर्गत प्रथम धर्म से जन्म से हिंदू हो चाहे वे नास्तिक या अस्तिक हो, सर्व धर्म सद्भाव या फिर मिश्रित धर्म में आस्था रखते हों। भारत संघ एक धर्म निरपेक्ष राज्य है। हर व्यक्ति को अधिकार है कि वह अपनी पसंद के किसी भी धर्म का अनुकरण करे। समस्या तब उठी जब विदेशी आक्रामकों विशेषकर मुसलमानों के यहाँ बस जाने के पश्चात् इस शब्द का प्रयोग यहाँ के रहने वालों के लिए किया जाने लगा। अंग्रेज़ों के आने पर ईसाई, मुसलमान, यहूदी, पारसी हिंदू धर्म से अलग माने जाने लगे और वे अपने धर्म के क़ायदे-क़ानूनों को ही स्वीकारते।

प्रश्न यह है कि परिवार की परिभाषा को परिपूर्ण करने वाला विवाह संस्कार (जन्म-जन्मांतरों का अटूट संबंध, मनुस्मृति, 9.101) में विवाह-विच्छेद को कोई स्थान नहीं दिया था। पर

नारद और पाराशर एक स्त्री को अपने पति को छोड़ने व दूसरी शादी करने के अधिकार को स्वीकार करते हैं। नारद के अनुसार ये परिस्थितियाँ पाँच थीं --

''नष्टे मृते परिव्रजते क्लीबेच पति ते पतौ।
पंचामस्तु नारीणाम्, पतिरन्यो विधीयते।।

(नारद स्मृति, 12.97 पाराशर स्मृति, 4.27)

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में स्पष्ट कहा हे कि विवाह का प्रकार अनुमोदित नहीं है। जैसे पैशाच या राक्षस विवाह, तो ऐसी स्थिति में सहमति से भी विवाह-विच्छेद हो सकता है।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के अंतर्गत विवाह-विच्छेद के मुख्य आधार हैं -- जारता, क्रूरता, अभिव्यंजन (एक पक्ष का घर) से परिवर्तन (धर्म परिवर्तन कर लेना), उन्मत्ता या मानसिक विकृति, असाध्य कुष्ठ, रतिजन्य रोग, संसार का परित्याग, प्रकल्पित मृत्यु, पति द्वारा दूसरा विवाह, पति का बलात्संग, भरण-पोषण की डिक्री, यौवनागमन का विकल्प, दांपत्य जीवन की पुनर्स्थापन, न्यायिक पृथक्करण, पारस्परिक सहमति और रूढ़िगत विवाह विच्छेद।

हिंदू विवाह अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय पुनः मिलाप (पति-पत्नी) को आदेश नहीं दे सकता है; मात्र प्रयत्न कर सकता है। दूसरे, इन मामलों में पत्नी के भरण-पोषण और बच्चों की अभिरक्षा, शिक्षा और भरण-पोषण की राशि कुछेक बातों को ध्यान में रख कर जैसे पक्षकारों की आय, चल और अचल संपत्ति, पक्षकारों की सामाजिक स्थिति तथा डिक्री पारित करने से पूर्व की आर्थिक, सामाजिक स्थिति तथा आचरण इत्यादि को ध्यान में रख कर निर्धारित करता है।

भरण-पोषण के दायित्व के विषय में मनु का कथन है कि वृद्ध माता-पिता, शीलवती पत्नी और अपत्यों का भरण सदैव करना चाहिए चाहे इसके लिए सौ अपकृत्य ही क्यों न करने पड़े।

हिंदू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 के अंतर्गत पत्नी, विधवा पुत्र-वधू, बच्चे, वृद्ध माता-पिता ही नहीं अवैध पुत्र-पत्रियाँ, दादा-दादी, सौतेली माँ आदि भरण-पोषण का दायित्व भी कहा गया है। यही नहीं, पुत्री पर भी इन-इन लोगों के भरण-पोषण का दायित्व स्थिर किया गया है।

हिंदू अधिकार अधिनियम, 1956 के अंतर्गत यदि कोई किसी मृत की संपदा का उत्तराधिकारी होता है तो वह मृतक के आश्रितों को संपदा से भरण-पोषण देने को बाध्य है पर व्यावहारिक रूप से कोर्ट-कचहरी में वे-वे लोग भरण-पोषण पाने के लिए भाग-दौड़ करें -- यह थोड़ा कठिन और लंबा खींचने वाला मामला है। वैसे व्यक्ति स्वयं अपना कर्त्तव्य समझे तभी ठीक है।

पारिवारिक क़ानून की बात करते हैं तो दत्तक लेने (गोद लेने) की आवश्यकता के



संबंध में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि में उल्लेख किया गया है; उदाहरणस्वरूप ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप को राजा हरिश्चंद्र ने गोद लिया। दत्तक लेने के पीछे दो उद्देश्य होते थे -- पिंड दान और जल दान से मिलने वाला आध्यात्मिक लाभ तथा दत्तक लेने वाले का नाम और वंश जारी रखना। लेकिन हिंदू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 ने धार्मिक उद्देश्य को गौणता प्रदान की है। हाँ, अब दत्तक पुत्र ही नहीं, दत्तक पुत्री भी हो सकती है। इस अधिनियम ने पुरुषों के समान स्त्रियों को भी दत्तक लेने व देने का अधिकार दिया है। यदि कोई अविवाहिता या विधवा दत्तक लेती है तो दत्तक भावी या मृत की दाय नहीं ले सकता।

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के अनुसार व्यक्ति वसीयत दस्तावेज़ द्वारा स्वार्जित संपत्ति का उत्तराधिकारी निश्चित कर सकता है और यदि वसीयत के अभाव में यदि उसके उत्तराधिकारी अनर्ह हो (जो जन्म से पागल या मूढ़ है या हत्यारा हो) तो संपत्ति सरकार की तभी होगी जब यह सिद्ध हो जाए कि मृतक का संसार में कोई रिश्तेदार नहीं है। इस विषय पर मनुस्मृति में कहा गया है कि उत्तम पुत्र के अभाव में हीन पुत्र पिता के धन का भागी होता है और सबके समान गुणी होने पर सभी समान धन प्राप्त करने के अधिकारी होंगे।

प्रारंभ से ही भारत में संयुक्त परिवार की पद्धति रही है जिसमें एक ही पूर्वजों के पुत्रों, माताओं, पत्नियों, विधवाओं तथा अविवाहित पुत्रियाँ सम्मिलित होती हैं। यद्यपि आज एकल परिवार अर्थात् माता-पिता और संतान का ही चलन हो गया है। हिंदू विवाह अधिनियम में स्पष्ट किया गया है कि शून्य विवाह की संतानें भी धर्मज्ञ मानी जाएँगी। इसी प्रकार गोद ली गई संतान पुत्र या पुत्री भी संयुक्त परिवार के सदस्य माने जाएँगे। किन्हीं एक स्थितियों में संयुक्त परिवार का सदस्य अलग से कोई कार्य, इनाम इत्यादि प्राप्त करता है तो वह उसकी अपनी संपत्ति कहलाएगी। संयुक्त संपत्ति अर्थात् जिसके अनेक स्वामी हों; प्रत्येक स्वामी के अंश को निश्चित कर देने का नाम विभाजन है -- ''विभागों नाम द्रव्य समुद्रायविषयाणां अनेक स्वाम्यानां तदेक देशेषु द्रव्यस्य व्यवस्थापनम्।'' (याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.114)

अब प्रश्न उठता है कि भारतीय पारिवारिक मूल्यों की। वास्तव में, बच्चे के व्यक्तित्व विकास में परिवार की भूमिका अहम होती है। माता-पिता और यदि संयुक्त परिवार है तो बड़ों की छाप सर्वप्रथम बच्चे पर पड़ती है। घर ही प्रथम पाठशाला कही जाती है। परिवारजन ही अपने आचरण से जीवन-मूल्यों का उदाहरण पेश करते हैं।

देखा जाए तो संस्कृति, संस्कार और संस्कृत तीनों शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक (कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होते हैं तथा इनका अर्थ है सँवारना, शुद्ध करना अर्थात् दुर्गुण, दुर्व्यसन, पाप तथा कुभावनाओं को हृदय से निकाल कर निष्पाप तथा शुभ

गुणों से युक्त करना। प्रत्येक माता-पिता की चाहना होती है कि उनकी संतान अच्छे गुण, सदाचार, सद्भाव युक्त हो और जीवन में सफलता प्राप्त करें)।

वास्तव में व्यक्तित्व विकास में दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व कार्य करते हैं। प्रथम, वंशानुक्रम और दूसरा परिवेश। वंशानुक्रम व्यक्ति को जन्मजात शक्तियाँ या विशेषताओं से मंडित करता है और परिवेश उन-उन शक्तियों की अभिवृद्धि का अवसर प्रदान करता है। इस बीसवीं और इक्कीसवीं सदी की एक बहुत बड़ी विडंबना यह है कि आज औरत बाह्य क्षेत्र में भी कार्य कर उठी है। समयाभाव मुख्य कारण है कि वह चाह कर भी बच्चे को वे-वे संस्कार देने में सक्षम नहीं हो पा रही। इधर प्रचार-प्रसार, सोशल मीडिया, बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, व्यक्तित्ववाद, स्वार्थपरता आदि-आदिभी अमीर-ग़रीब, शिक्षित-अशिक्षित, बूढ़े-बच्चे आदि अर्थात् प्रत्येक वर्ग को अपने शिकंजे में आपादमस्तक जकड़े हुए हैं। कहने का एकमात्र आशय यह है कि पारिवारिक मूल्यों या नैतिक मूल्यों का ह्रास बड़ी तेज़ी से हो रहा है। आज हर व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण और शीघ्र-अतिशीघ्र धन, ऐश्वर्य, सत्ता इत्यादि को पाने की अंधी दौड़ में पड़ा हुआ है।

सवाल यह है कि क्या विद्यालीय शिक्षा में नैतिक मूल्यों का महत्त्व बताया जाए? या फिर उसे एक विषय के रूप में पढ़ाया जाए? मेरे विचार में मौखिक या लिखित नैतिक शिक्षा का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा जब वह स्कूल के दाख़िले से लेकर नंबर, डिग्री आदि में हो रहे घोटोलों की ख़बर सुनेगा और उन-उन अपराधियों को सालों-साल गुल्छर्रे उड़ाता पाएगा। आज का युवा ही नहीं हर वर्ग फ़िल्मी सितारों के पहरावे में नक़ल करना ही पर्याप्त नहीं मानता वरन् मानसिक रूप से भी इस दिखावे की दुनिया का गुलाम बन गया है। लिव-इन-रिलेशन, एकल पितृत्व या मातृत्व, समलैंगिकता या फिर यौन संबंधी स्वतंत्रता पुरुष ही नहीं नारी को भी अपने आँचल में समेट रही है। कोई कारगर उपाय नज़र नहीं आता जिससे इस उच्छृंखलता, जिसे आज का मानव (नर-नारी) आज़ादी नाम देता है -- से मानव मूल्य समझाने का। डॉ. नामवर सिंह जी की एक उक्ति प्रस्तुत करना चाहती हूँ; ''आचार विश्व बाज़ार का; हिंदू संस्कृति सिर्फ़ वाणी का विलास है।'' दूसरे शब्दों में कहूँ तो मानव मंगल की ओर और मानवता जंगल की ओर -- वाली बात हो रही है।

हाँ, व्यक्ति को स्वयं बुराइयों से हटने का विचार आ जाए तो कहा नहीं जा सकता। सच मानिए इस शरीर में, परमात्मा कहें या सर्वशक्तिमान का कोई अंश जिसे हम अंतरात्मा या अंतःकरण कहते हैं पर हम मानव लाभ, लोभ, लालच और लालसा के चलते उस अंतःकरण की आवाज़ को अनसुना एवं दरकिनार कर देते हैं फिर धीरे-धीरे हमारी जीवन-पद्धति ही बन जाती है। सो, अब तो स्थिति यह है कि मछली तली चाह कर ही वापिस आती है। अब देखना है आगे-आगे होता है क्या?

❑



सन्तोष खन्ना

# महिला सशक्तिकरण और क़ानून

**व्यक्तिक या स्वीय कानून (Personal or civil laws)**

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् छठे दशक में देश की संसद ने महत्त्वपूर्ण पारिवारिक क़ानून पारित कर पारिवारिक विधियों का संहिताकरण किया। यह क़ानून इस प्रकार हैं :

1. विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (Special Marriage Act, 1954)
2. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (The Hindu Marriage Act, 1955)
3. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (The Hindu Succession Act, 1956)
4. हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (The Hindu Minority and Guardianship Act, 1956)
5. हिंदू दत्तक और भरण-पोषण अधिकार अधिनियम, 1956 (The Hindu Adoption and Maintenance Act, 1956)

**विशेष विवाह अधिनियम, 1954**

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 भारत का एक धर्म-निरपेक्ष क़ानून है जो जम्मू और कश्मीर को छोड़कर संपूर्ण भारत में लागू है। इस क़ानून के अंतर्गत कोई भी भारत के दो नागरिक परस्पर विवाह कर सकते हैं और जिनका विवाह इस क़ानून के अंतर्गत होता है उस पर सभी मामले अर्थात् तलाक, गुज़ारा-भत्ता, बच्चों की अभिरक्षा आदि इसके अंतर्गत विनियमित होते हैं। जो नागरिक इस क़ानून के अंतर्गत विवाह नहीं करते, उन पर यह क़ानून लागू नहीं होता है। हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के अंतर्गत हिंदू महिलाओं को इस अधिनियम अथवा हिंदू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम के अंतर्गत गुज़ारा-भत्ता मिल सकता है।

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 और हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के प्रावधानों में काफी समानताएँ हैं विशेष रूप से विवाह की शर्तें, दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन

(Restitution of Conjugal Rights), तथा न्यायिक प्रथक्करण (Judicial Separation), विवाह विच्छेद के आधार, बच्चों की स्थिति, गुज़ारा-भत्ता आदि के बारे में दोनों क़ानून काफी मिलते-जुलते हैं।

भारत की प्रमुख जातियों यथा मुस्लिम, ईसाई, पारसी आदि की अलग-अलग स्वीय विधियाँ हैं जिनके अपने-अपने पारिवारिक क़ानून हैं। यह भी सत्य है कि उनमें से अनेक प्रावधान मिलते-जुलते हैं किंतु अंतर भी है यथा हिंदू विवाह को पवित्र बंधन माना जाता है जो अटूट होता है और मुस्लिम विवाह एक सौदा है, करार है। किंतु इस सच्चाई से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि प्रमुख जाति की संस्कृति, संस्कार, विचार और व्यवहार अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक जातियों को अवश्य प्रभावित करते हैं। यह समझा जाता है कि हिंदू जाति में दहेज प्रथा से उपजी विकृतियों का प्रभाव इन जातियों पर भी पड़ा है यथा मुस्लिम जातियों में भी दहेज का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है जिसके कारण लेन-देन की प्रथा अथवा लेन-देन में कमी रहने के कारण महिलाओं को सताया जाता है।

**हिंदू विवाह अधिनियम, 1955**

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के माध्यम से विवाह एवं विवाह से संबद्ध मामलों में संहिताकरण (codification) किया गया है। इसमें महिला और पुरुष को समानता के धरातल पर रखने का प्रयास दिखाई देता है। 1976 में इस क़ानून में विवाह की आयु बढ़ाना, तलाक़ की शर्तों को सुगम बनाना जैसे महत्त्वपूर्ण संशोधन किए गए। चूँकि यह क़ानून हिंदुओं पर लागू होता है इसलिए इसमें हिंदू शब्द को पारिभाषित कर दिया गया है। इस परिभाषा में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति जिसके माता-पिता दोनों धर्मतः हिंदू, बौद्ध, जैन या सिख हैं, हिंदू हैं। हिंदू में वीर शैव, लिंगायत, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज या आर्य समाज के अनुयायी भी आते हैं।

यदि किसी बच्चे की, चाहे वह जायज़ संतान है या जारज़, माँ या पिता दोनों में से एक हिंदू है और बच्चे का लालन-पालन हिंदू रीति-रिवाज से किया गया है तो वह हिंदू कहलाएगा। **मेनका गांधी बनाम इंदिरा गांधी मामले** (ए.आई.आर. 1984, दिल्ली) में यह निर्णय दिया गया था कि संजय गांधी, जिनके पिता पारसी थे और मां हिंदू थी, हिंदू है। यह कहा गया कि जो व्यक्ति जोरेस्टरवाद को नहीं मानता, पारसी धर्म का अनुयायी नहीं है तो इसलिए वह पारसी नहीं है जब तक यह सिद्ध न हो जाए कि वह हिंदू क़ानून, प्रथाओं आदि से अनुशासित नहीं है। धर्म परिवर्तन कर हिंदू बनने वाला अथवा पुनः धर्म परिवर्तन कर हिंदू बनने वाला व्यक्ति भी हिंदू कहलाएगा और उस पर यही क़ानून लागू होगा।

हिंदू विवाह के इस क़ानून के अंतर्गत विवाह की शर्तें निर्धारित कर दी गई हैं।



हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5 के अंतर्गत यह शर्तें निर्धारित हैं। विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अंतर्गत धारा 4 से 24 तक तथा पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1936 की धारा 3 में विवाह की शर्तों का प्रावधान है। मुख्यतया ये शर्तें इस प्रकार हैं :

1. विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से किसी की जीवित पत्नी अथवा पति न हो;
2. चित्त-विकृति के कारण दोनों में से विवाह के लिए सम्मति देने में असमर्थन हो;
3. सम्मति देने पर इतना विक्षिप्त न हो कि वह विवाह और सन्तानोत्पत्ति के लिए अयोग्य हो;
4. उसे उन्मत्तता का बार-बार दौरा न आता हो;
5. विवाह के समय लड़के की आयु 21 वर्ष और लड़की की आयु 18 वर्ष से कम न हो।
6. दोनों प्रतिबिधित नातेदारी (prohibited relationships) में न आते हों या सपिंड न हो।

जब हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 और विशेष विवाह अधिनियम, 1954 पारित किया गया था तो लड़के और लड़की की विवाह की आयु क्रमशः 18 और 15 थी जो वर्ष 1976 में इन अधिनियमों में संशोधन कर यह आयु बढ़ा कर क्रमशः 21 और 18 वर्ष कर दी गई। इसी प्रकार, पारसी अधिनियम में भी 1988 में संशोधन कर विवाह की आयु बढ़ा दी गई।

इन क़ानूनों से यह लाभ हुआ कि बहु-विवाह पर अंकुश लगा और निश्चित रूप से इससे महिलाओं को फ ायदा हुआ क्योंकि सामान्यतः पुरुष बहु-विवाह कर पत्नी के लिए समस्या और उत्पीड़न का कारण बनते थे। विवाह की आयु बढ़ाने से भी महिलाओं को विशेष लाभ पहुँचा है क्योंकि बाल-विवाह अथवा छोटी आयु में विवाह होने से महिला इतनी परिपक्व नहीं होती थीं कि अपनी संतान की सही प्रकार से देखभाल कर सकें और छोटी आयु में ही माँ बन जाने से उनके स्वास्थ्य की भी हानि होती थी या कई बार वह अकाल मृत्यु को भी प्राप्त हो जाती थीं।

बहु-विवाह अथवा द्वि-विवाह अब क़ानूनी रूप से अपराध हैं। यदि कोई पुरुष या कोई स्त्री एक पत्नी अथवा पति के रहते दूसरा विवाह करते हैं तो क़ानून पहले तो इस विवाह के अस्तित्व को नहीं मानता और दूसरा, उसे द्वि-विवाह के अपराध के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 494 तथा 495 के अंतर्गत दंड भी दिया जा सकता है। **संतोष कुमारी बनाम सुरजीत सिंह के मामले** (ए.आई.आर. 1990, हिमाचल प्रदेश 1977) में हिंदू रीति के अनुसार विवाहित पत्नी ने मुकदमा दायर कर न्यायालय से इस बात की अनुमति माँगी कि उसके पति को दूसरा विवाह करने की अनुमति दी जाए। न्यायालय

ने दूसरे विवाह की अनुमति तो दे दी किंतु साथ ही यह निर्णय भी दिया कि पहली पत्नी का ही विवाह वैध होगा और दूसरा विवाह इस सीमा तक ग़ैर-कानूनी होगा कि क़ानून उस विवाह के अस्तित्व को नहीं मानेगा और भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अंतर्गत दंडनीय होगा।

**कानूनों की जानकारी से नुकसान से बचा जा सकता है।**

उच्चतम न्यायालय ने **सविताबेन सोमाभाई भाटिया बनाम गुजरात राज्य तथा अन्य के मामले** में 10 मार्च, 2005 में दिए गए एक निर्णय में कहा कि यदि किसी महिला का हिंदू रीति-रिवाज से विवाह किसी ऐसे व्यक्ति से होता है जिसकी जीवित पत्नी हो तो ऐसा विवाह क़ानूनी रूप से अकृत और शून्य (null and void) होता है। इस मामले में हुआ यह था कि सविताबेन ने पूरे रीति-रिवाज के साथ एक ऐसे पुरुष से विवाह कर लिया जिसकी एक जीवित पत्नी थी। आरंभ में उस व्यक्ति का अपनी पत्नी के साथ अच्छा व्यवहार था किंतु बाद में वह उसका मानसिक एवं शारीरिक शोषण करने लगा। जब पत्नी ने इसका कारण जानना चाहा तो उसे पता चला कि उसका किसी अन्य महिला से संबंध है। सविताबेन ने गुज़ारे भत्ते के लिए आवेदन पत्र फाइल किया तो उस व्यक्ति ने कहा कि सविताबेन उसकी विधि सम्मत पत्नी नहीं है क्योंकि उसका विवाह तो पहले ही हो चुका था और उसके दो बच्चे भी हैं। इस मामले में सविताबेन ने न्यायालय में यह दलील दी कि जब उसने विवाह किया था तो उसे इस बात का पता नहीं था कि वह व्यक्ति पहले से विवाहित था। न्यायालय ने इस दलील को न मानते हुए कहा कि जब कोई व्यक्ति अपनी पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह कर लेता है तो ऐसा विवाह विधि-सम्मत नहीं होता।

यह भी जान लेना चाहिए कि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 में संशोधन कर मिर्गी रोग को विवाह की शर्तों में से निकाल दिया गया है। संशोधन से पहले इस धारा में प्रावधान था कि यदि किसी को मिर्गी रोग का बार-बार दौरा पड़ता हो तो ऐसा विवाह ग़ैर-कानूनी माना जाएगा। अब मिर्गी रोग का इलाज हो जाता है अतः इस शर्त को संशोधन कर इसे क़ानून से निकाल दिया गया है।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के अंतर्गत विवाह को पवित्र बंधन माना गया है और यह विवाह तभी वैध माना जाता है जब विवाह इस क़ानून की धारा 7 में दिए गए विधि विधान के अनुसार संपन्न हो जिसमें सप्तपदी अर्थात् अग्नि के समक्ष वर और वधु द्वारा सात पद चलना आबद्ध कर माना गया है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि किसी भी विवाह को, चाहे वह धोखे से किया गया हो अथवा कोई अप्रिय तथ्य छुपा कर किया गया हो, अटूट माना जाएगा। इस संबंध में इस क़ानून की धारा 12 दृष्टव्य है :



1. नपुंसकता के कारण विवाहोत्तर संभोग नहीं हुआ हो;
2. विवाह के समय कोई पक्षकार मानसिक विकार के कारण विधिमान्य सम्मति देने में सक्षम नहीं था या वह विवाह या संतानोत्पत्ति के लिए अयोग्य है या उसे पागलपन का दौरा बार-बार पड़ता हो।
3. पत्नी विवाह के समय किसी और द्वारा गर्भवती हो।

उपरोक्त आधारों पर विवाह को शून्यकरणीय घोषित किया जा सकता है। इसके लिए पीड़ित पक्ष को संबद्ध न्यायालय में विवाह के शून्यकरण के लिए अर्ज़ी देनी होती है। इस प्रकार के प्रावधान विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 25 में, पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम 1936 की धारा 32 में तथा ईसाई जाति के लिए विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 19 में भी दिए गए हैं।

**विवाह विच्छेद (तलाक) का अधिकार**

जीवन का मनोविज्ञान भी बड़ा जटिल है और कई बार स्वार्थी या कुत्सित प्रवृत्तियाँ या अन्य कारण दांपत्य जीवन की चट्टानों को भी डायनामाइट कर देते हैं। संबंधों की कटुता कई बार इस हद तक बढ़ जाती है कि पति-पत्नी एक छत के नीचे रहने में स्वयं को असहाय या अयोग्य पाते हैं। तब कई बार एक ही विकल्प रह जाता है। अलग-अलग दायरों में कैद होना या अलग-अलग राहों के राही बनना। ऐसे में विवाह-विच्छेद ही एक मात्र रास्ता बचता है।

सभी समाज स्थायित्व के लिए विवाह की संस्था को महत्त्व देते हैं। इससे परिवार या घर भी स्थायी रहता है और यही बच्चों के सार्थक विकास के लिए बेहतर व्यवस्था है। क़ानून अंतिम रास्ते के रूप में विवाह-विच्छेद की अनुमति भी देता है। विवाह विच्छेद अर्थात् तलाक़ निश्चित क़ानूनी आधारों पर ही हो सकता है। हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 में तलाक़ के आधार दिए गए हैं। यह धारा इस प्रकार है :

''धारा 13(1) : कोई विवाह, इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो या पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थित अर्ज़ी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकता है :

1. दोनों में से किसी पक्षकार ने विवाह के बाद अपने पति अथवा अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वैच्छा से मैथुन किया है;
2. किसी एक पक्षकार ने दूसरे पक्षकार से क्रूरता बरती है;
3. दो वर्ष से अपने साथी को अभित्यक्त कर दिया है;
4. धर्म-परिवर्तन कर लिया है;
5. कोई पक्षकार असाध्य रूप से विकृत चित्त रहा है;
6. संचारी रोग से पीड़ित है;

7. किसी धार्मिक पंथ के अनुसार संन्यास ले लिया है;
8. पक्षकार जीवित है या नहीं, सात वर्ष से अधिक समय से उसकी खबर नहीं मिली है;
9. न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के एक वर्ष या उससे अधिक समय से पक्षकारों के बीच पुनः सहवास प्रारंभ नहीं हुआ है;
10. दांपत्य अधिकारों के पुनः स्थापन की डिक्री के एक वर्ष या उसके अधिक समय से दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है।

उपरोक्त आधारों के अतिरिक्त पत्नी को यह भी अधिकार दिया गया है कि यदि इस क़ानून के लागू होने के बाद पति की यदि कोई दूसरी पत्नी ज़िंदा है तो वह तलाक़ की अर्ज़ी दे सकती है। इसी प्रकार, पति बलात्कार अथवा अप्राकृतिक गमन का दोषी हो तो भी पत्नी तलाक़ के लिए अर्ज़ी दे सकती है किंतु यह तभी संभव है जब यह अपराध पति के विरुद्ध साबित हो जाए। यदि पत्नी के भरण-पोषण के लिए हिंदू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 अथवा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अंतर्गत गुज़ारे भत्ते की डिक्री पति के विरुद्ध पारित की गई हो और यदि पत्नी एक वर्ष से अधिक समय से पति से अलग रह रही हो और दोनों के बीच संबंध स्थापित न हुआ हो तो पत्नी तलाक़ की अर्ज़ी दे सकती है।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 में समय-समय पर संशोधन कर तलाक़ की शर्तों को सुगम बना दिया गया है। साथ ही, यह भी ध्यान रखा गया है कि विवाह का यह पावन बंधन अटूट बना रहे। 1976 में संशोधन से पहले विवाहोत्तर संबंधों को तलाक़ का आधार तो माना गया था किंतु उसमें 'living in adultery' शब्दों का इस्तेमाल किया गया था जबकि संशोधन के बाद यह प्रावधान कर दिया गया है कि यदि पति अथवा पत्नी ने स्वैच्छा से किसी भिन्न व्यक्ति से मैथुन किया है तो वह तलाक़ लेने का आधार होता है। पहले तलाक़ की अर्ज़ी न दे कर न्यायिक पृथक्करण की अर्ज़ी देने का प्रावधान था, अब तलाक़ और न्यायिक पृथक्करण दोनों में से किसी के लिए भी डिक्री पास की जा सकती है।

यदि किसी लड़की का विवाह 15 वर्ष की आयु से पहले हो गया हो और उसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले उस विवाह का निराकरण (repudiate) कर दिया हो तो वह 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के बाद तलाक़ के लिए अर्ज़ी दाख़िल कर सकती है। जहाँ तक आयु-निर्धारण का प्रश्न है इस संबंध में माता-पिता का साक्ष्य माना जाता है। जन्म पत्री में दर्ज जन्म तिथि और जन्म पत्री को साक्ष्य मानकर आयु के प्रश्न का समाधान किया जा सकता है।

अब तलाक़ का एक सुगम रास्ता निकाला गया है। तलाक़ पत्नी और पति की



पारस्परिक सम्मति से भी हो सकता है, किंतु यह सम्मति स्वैच्छिक, स्वतंत्र एवं सहज होनी चाहिए; धोखे या बल से ली गई न हो। इसमें पति-पत्नी को संयुक्त रूप से अर्ज़ी दाख़िल करनी होगी कि वे एक वर्ष अथवा उससे अधिक समय से अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए। यदि इस अर्ज़ी के दर्ज कराने के छः महीने बाद और 18 महीने के भीतर इस अर्ज़ी को वापस नहीं लिया जाता तो न्यायालय उस अर्ज़ी पर विवाह-विघटन की डिक्री पारित कर सकता है। इस प्रकार की अर्ज़ी देने के बाद केवल यही सिद्ध होता है कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और उन्होंने परस्पर सम्मति (mutual consent) से तलाक़ लेने का फैसला किया है। यदि इस बीच पति अथवा पत्नी में से कोई अपनी सहमति वापस ले लेता है तो ऐसी अर्ज़ी व्यर्थ हो जाती है।

### गुज ारा भत्ता लेने का अधिकार

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 से शासित महिलाएँ इस क़ानून अथवा हिंदू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 के अंतर्गत गुज़ारा-भत्ता ले सकती हैं। इसी प्रकार, ईसाई महिलाएँ भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869, पारसी महिलाएँ पारसी विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1936 और मुस्लिम महिलाएँ अपनी स्वीय विधि के अंतर्गत गुज़ारा-भत्ता ले सकती हैं। महिलाएँ दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अंतर्गत भी पति से गुज़ारा-भत्ता ले सकती हैं। इस धारा के अंतर्गत सभी धर्मों की महिलाएँ गुज़ारा-भत्ता पाने की हक़दार हैं किंतु मुस्लिम जाति की महिलाएँ 1986 के महिला (विवाह-विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम के अंतर्गत ही गुज़ारा-भत्ता पाने की हक़दार हैं। महिलाएँ मुकदमे के दौरान भरण-पोषण के लिए गुज़ारा-भत्ता ले सकती हैं। न्यायालय आवेदन करने पर पत्नी को यह राहत दे सकता है बशर्ते कि पत्नी की कोई अपनी स्वतंत्र आय न हो। अंतरिम राहत देने का औचित्य यह है कि वैवाहिक संबंधों में तनाव आने पर प्रायः महिलाओं को पति का घर छोड़ना पड़ता है और उसे अपने माता-पिता आदि संबंधियों पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में पति का यह क़ानूनी दायित्व है कि वह पत्नी को गुज़ारा-भत्ता और मुकदमा खर्च दे। यदि पत्नी पति पर मुकदमा करे या पति करे, दोनों स्थितियों में पत्नी आवेदन कर अंतरिम राहत ले सकती है क्योंकि यदि पत्नी के पास अपने भरण-पोषण और मुकदमे की कार्यवाही के लिए व्यय करने के साधन नहीं हैं तो साधनों के अभाव में वह न्यायालय से न्याय नहीं पा सकेगी।

मुस्लिम महिलाओं को गुज़ारा-भत्ता मुस्लिम स्त्री (विवाह-विच्छेद पर संरक्षण अधिकार) अधिनियम, 1986 के प्रावधानों के अंतर्गत मिलता है। इस अधिनियम की धारा 4 के

अनुसार पति द्वारा उसे गुज़ारा-भत्ता देने का प्रावधान नहीं है। उसे गुज़ारा-भत्ता उन रिश्तेदारों से मिलने का प्रावधान है जो उसकी मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति के वारिस होते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि पति अपनी पत्नी का वारिस माना जाता है और अगर बच्चे होते हैं तो उसे (पति) चौथाई हिस्सा मिलता है और बच्चे न होने की स्थिति में वह आधे का वारिस होता है। किंतु वह पत्नी की सम्पत्ति का वारिस होते हुए भी पत्नी को गुज़ारा-भत्ता देने का उसका दायित्व नहीं है क्योंकि यह कहा जाता है कि तलाक़ के बाद वह पति नहीं रहता और पत्नी उसकी पत्नी नहीं रहती अतः गुज़ारा-भत्ता क्यों दिया जाए। यदि बच्चे महिला को गुज़ारा भत्ते नहीं दे सकते तो न्यायालय माता-पिता को गुज़ारा-भत्ता देने के लिए कहता है और यदि माँ-बाप भी उसे गुज़ारा-भत्ता देने में सक्षम न हों तो अन्य रिश्तेदारों को यह दायित्व सौंपा जाता है। यदि महिला को रिश्तेदारों से गुज़ारा-भत्ता नहीं मिलता तो न्यायालय उसे वक्फ बोर्ड से गुज़ारा-भत्ता दिलाने का आदेश देता है। इस प्रकार देखा जा सकता है मुस्लिम तलाकशुदा महिला को अनेक व्यक्तियों से गुज़ारा-भत्ता लेने का प्रावधान है। जब उसे गुज़ारा-भत्ता नहीं मिलता तो उसे अपने रिश्तेदारों के विरुद्ध मुकदमा भी करना होता है। क्या यह संभव है? वह कितनों के विरुद्ध मुकदमा चलाएगी?

**बच्चों की अभिरक्षा का अधिकार**

माता-पिता के तलाक़ हो जाने पर अथवा न्यायिक पृथक्करण होने पर क़ानून ऐसे माता-पिता के बच्चों को संरक्षण प्रदान करता है। हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 26 में बच्चों की अभिरक्षा के बारे में यह उपबंध है कि न्यायालय विवाह विवाद संबंधी डिक्री देते समय बच्चों के भरण-पोषण, शिक्षा आदि की व्यवस्था के साथ-साथ उनकी अभिरक्षा के बारे में उचित एवं न्यायसंगत आदेश दे सकेगा। न्यायालयों को इस संबंध में व्यापक अधिकार प्राप्त हैं और वे प्रत्येक मामले में तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार बच्चों की अभिरक्षा के प्रश्न पर न्यायसंगत निर्णय दे सकते हैं।

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 38, पारसी विवाह अधिनियम, 1936 की धारा 49 तथा भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 41 में भी इसी प्रकार के उपबंध किए गए हैं। यद्यपि हिंदू अप्राप्तव्यता और संरक्षता अधिनियम, 1956 के अंतर्गत अव्यस्क बच्चों का नैसर्गिक संरक्षक पहले उनका पिता होता है और उसके पश्चात् उनकी माता। किंतु, आमतौर पर पाँच वर्ष तक बच्चों की अभिरक्षा माता के पास रहने का उपबंध है। इस उपबंध को वैवाहिक क़ानून के साथ पढ़ा जाए तो इसका अर्थ यह हुआ कि पाँच वर्ष तक के बच्चे की अभिरक्षा माता के पास रहेगी और उसके पश्चात् पिता के पास। किंतु यह ज़रूरी नहीं कि न्यायालय ऐसा ही आदेश दे क्योंकि अभिरक्षा और संरक्षण दो अलग-अलग बातें हैं।



उच्चतम न्यायालय ने **पूनम दत्ता बनाम कृष्ण लाल दत्ता** (ए.आई.आर. 1989 सु. को. 401) मामले में बच्चे के हित को अत्यधिक महत्त्व देते हुए पक्षकारों को आदेश दिया था कि वह ऐसा कोई काम न करें जिससे बच्चे के हितों अथवा उसके शरीर और दिमाग़ पर विपरीत प्रभाव पड़ता हो। इसी प्रकार **वीना कपूर बनाम वीरेंद्र कुमार के मामले** (ए.आई.आर. 1982 सु.को. 792) में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि क़ानून की स्थिति अब एकदम स्पष्ट है कि अव्यस्क बच्चों की अभिरक्षा देते समय बच्चे की भलाई को ध्यान में रखा जाता है न कि पक्षकारों के बच्चों के मामले में अधिकारों को। यदि बच्चा लड़की है तो उसकी अभिरक्षा माता को ही दी जाती है। **बूटा सिंह बनाम अमरजीत कौर (1981)** के मामले में बच्ची की अभिरक्षा माता को देते हुए न्यायाधीश ने कहा था कि ''बच्ची बड़ी हो रही है अतः उचित होगा कि उसे अपनी माता की अभिरक्षा और निरीक्षण में रखा जाए।''

विवाह, तलाक़, भरण-पोषण और बच्चों की अभिरक्षा संबंधी उपरोक्त विश्लेषण से यह तथ्य सामने आता है कि पिछले 56 वर्षों में हुए क़ानूनी संशोधनों के कारण भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत क़ानूनों के प्रमुख प्रावधानों में काफी समानता आती जा रही है। इसका एक कारण यह भी है कि स्वतंत्र भारत में इंग्लैंड के मेट्रीमोनियल एक्ट के प्रावधानों का काफी प्रभाव है। जैसे-जैसे इंग्लैंड के मेट्रीमोनियल क़ानून में संशोधन होते रहे हैं भारत में भी विवाह क़ानूनों में संशोधन किए जाते रहे हैं। उदाहरणार्थ, परस्पर सहमति से तलाक, अकृत और शून्यकृत विवाह में डिक्री पारित होने से पहले पैदा हुए बच्चों को जायज़ मानना और उन्हें माँ-बाप की सम्पत्ति में हक़ देना आदि प्रावधान इंग्लैंड के मेट्रीमोनियल क़ानून के प्रभाव में ही किए गए हैं।

कुछ मामलों को छोड़ कर विवाह आदि क़ानून में महिलाओं को पुरुषों के बराबर का दर्जा और अधिकार देने का प्रयास किया गया है। संविधान के प्रावधान तो स्त्री-पुरुष में किसी प्रकार का भेद नहीं करते। फिर भी वास्तविक रूप में महिलाओं की स्थिति पुरुष के बराबर नहीं हो पाई है। उसके विरुद्ध क्रूरता, बलात्कार तथा अन्य अपराध किए जाते रहे हैं। दहेज प्रतिषेध क़ानून है परंतु दहेज लेने-देने पर कहीं कोई अंकुश नहीं है। प्रायः दहेज हत्याएँ और आत्महत्याएँ होती रहती हैं, बलात्कार संबंधी क़ानून को भी काफी कड़ा बना दिया गया है।

❑

-

सुमन कुमारी

# भारत में वैवाहिक समस्याएँ और उनके विधिक निदान

हमारे देश में विवाह संस्कार को एक बहुत ही सुंदर एवं स्मरणीय उत्सव माना जाता है। हमारी भारतीय संस्कृति में वैवाहिक बंधन को अटूट माना गया है जिसे मुत्यु पर्यंत निभाया जाता है। पतिव्रत धर्म की प्राचीन भारतीय अवधारणा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी पहले थी। पतिव्रत धर्म प्रत्येक स्त्री को प्यार, सेवा और अपने पति के प्रति समर्पण सिखलाता है, वहीं यह पतियों को भी अपनी पत्नी के प्रति पूर्ण समर्पण और संकट के समय उसकी सुरक्षा के प्रति सजग बनाता है।

प्राचीन काल में विधवाओं के विवाह की वैसी सुविधा मौजूद थी जैसे कि विधुरों के विवाह की। उनके ऊपर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था। वह विधुरों की भाँति पुनः विवाह करने के लिए स्वतंत्र थीं। विधवा-पुनर्विवाह का समर्थन करते हुए राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद ने भारत से सती-प्रथा की समाप्ति पर बल दिया। इस्लाम धर्म के पाक कुरान में पैगंबर मोहम्मद के अनुसार पुनर्विवाह के जरिए विधवाओं की समाज में प्रतिष्ठा सुनिश्चित होती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने स्वयं महिलाओं के उत्थान एवं विधवा विवाह के लिए अनेक प्रयत्न किए। भारत के अधिकांश हिस्सों में पितृसत्तात्मक परिवार की व्यवस्था है। यहाँ विवाह के बाद लड़की ससुराल में आकर रहती है। यहाँ पुरुष के नाम से ही परिवार का नाम चलता है। बच्चे अपने पिता के नाम से ही जाने और पहचाने जाते हैं। इसी कारण परिवार में लड़के के जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती हैं और लड़की के जन्म पर दुःख। यही कारण है कि उनके खाने-पीने पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। आजकल कन्या जन्म से छुटकारा पाने के लिए कुछ स्थानों पर लड़की के पैदा होते ही उसे गला घोंटकर या भ्रूण हत्या के द्वारा मार दिया जाता है। कारण, लड़कियों से वंश आगे नहीं बढ़ सकता है। अधिकांश लड़कियाँ उचित शिक्षा से भी वंचित रह जाती हैं।

देश के कुछ हिस्सों में मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था है। इन परिवारों में लड़के शादी



के बाद लड़की के घर जाकर रहते हैं। लड़की के कुल के नाम से ही परिवार का नाम आगे चलता है। लड़की ही परिवार की मुखिया होती है। पारिवारिक इकाई में महिला का निर्णय पुरुषों की तुलना में अधिक प्रभावी होते हैं। ऐसी परिवार व्यवस्था मात्र कुछ समूह तक ही सीमित है। इसे विविधता में एकता और एकता में विविधता का अटूट दर्शन कहा जा सकता है। भारत विभिन्नताओं का चोला पहने ऐसा राष्ट्र है जिसमें विविधता कहीं रीति-रिवाज़ तो कहीं संस्कृति के रूप में सक्रिय है। यह संस्कृति की ही भिन्नता है कि भारत के कुछ हिस्सों में बहु पति प्रथा प्रचलित है, तो उत्तर भारत के कुछ कबुलाई जातियों में बहु पत्नी का प्रचलन है। हिंदू विवाह अधिनियम के पारित होने के पश्चात् किसी पुरुष या स्त्री को एक से अधिक विवाह करने की अनुमति नहीं। हिंदू विवाह अधिनियम में हिंदू होने के कुछ ख़ास प्रकार और उनकी प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया गया है। हिंदू होने के संबंध में निम्नांकित विचार निहित हैं --

- किसी भी जाति या संप्रदाय से संबंधित व्यक्ति हिंदू है जिसमें बौद्ध, जैन और सिक्ख आदि शामिल हैं।
- कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसने अपना मूलधर्म छोड़कर हिंदू धर्म अपनाया हो वह भी हिंदू है।
- प्रायः अनुसूचित जनजातियों पर यह क़ानून लागू नहीं होता क्योंकि उनके आचार और विचार-विधान भिन्न हैं।

**हिंदू विवाह विधि**

- हिंदू विवाह में वर-वधू का विवाह समाज में प्रचलित रीति-रिवाज़ों के अनुसार होता है।
- प्रायः हिंदू विवाह होम, यज्ञ, हवन और सप्तपदी रीतियों से पूर्ण होता है।
- हिंदू विवाह में वर और वधु दोनों पक्षों के परिजन द्वारा समस्त विधियों के साथ-साथ कुल देव का पूजन भी पूरे विधि-विधान से किया जाता है जिससे नवल दंपत्ति जोड़े को उनके पूर्वजों का आशीष प्राप्त हो सके।

**हिंदू विवाह के अनिवार्य तत्त्व**

हिंदू समाज अपनी रीति-रिवाज़ों के निर्वाह के लिए प्रसिद्ध है। यही कारण है कि इस धर्म के सभी संस्कार प्रत्येक धर्म के संस्कारों से भिन्न और प्रभावी हैं जिन्हें निम्नांकित बिंदुओं के माध्यम से बड़ी सहजता से जाना जा सकता है --

- विवाह के लिए लड़का और लड़की दोनों के लिए हिंदू होना आवश्यक है।
- वर्तमान विवाह से पूर्व लड़का-लड़की दोनों किसी भी प्रकार से विवाहित न हों। विवाह के समय लड़के की कोई जीवित पत्नी और लड़की का कोई जीवित पति न हो।

- विवाह के लिए लड़का-लड़की दोनों मानसिक रूप से स्वस्थ हों। साथ ही दोनों एक-दूसरे के क़रीबी रिश्तेदार न हों। जैसे माँ की बहन के लड़के का विवाह माँ की बेटी से वर्जित है। ठीक वैसे ही पिता के भाई या सगी बहन के बेटे से पिता की बेटी का विवाह वर्जित है।
- विवाह के लिए लड़के की उम्र कम से कम 21 वर्ष और लड़की की उम्र 18 वर्ष अनिवार्य है। इससे कम उम्र के लड़का-लड़की का विवाह क़ानूनी अपराध है किंतु विवाह वैध होगा।

**हिंदू विवाह विच्छेद के कारण**

- विवाह के पश्चात् पति की नामर्दगी के कारण विवाह टूट सकता है।
- कई बार अनेक धोखे और दबाबों के कारण संपन्न हुआ विवाह भी पतन की ओर अग्रसर हो जाता है। इस प्रकार इन धोखों में वह सभी धोखे शामिल हैं जिनके कारण पति-पत्नी दोनों के बीच किसी भी प्रकार की दूरी का निर्माण होता है।

**हिंदू धर्म में दूसरा विवाह : एक क़ानूनी अपराध**

हिंदू धर्म में ऐसी मान्यता है कि दूसरा विवाह किसी भी पति की पहली पत्नी और पत्नी का पहला पति जीवित रहते नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता है तो इसे क़ानून के विरुद्ध अपराध माना जाएगा। क़ानून के अनुसार दूसरे विवाह के लिए उपर्युक्त स्थिति का होना अमान्य है। क़ानून कहता है कि कोई भी पति पत्नी के जीते-जी दूसरा विवाह नहीं कर सकता। पहली पत्नी चाहे तो पति के ख़िलाफ़ थाने में या मजिस्ट्रेट कोर्ट में शिकायत दर्ज़ कर सकती है, ऐसे में पति को सात साल की क़ैद की सज़ा हो सकती है।

यदि पहले पति या पत्नी के जीवित रहते हुए विवाह हो भी गया तो वैध नहीं माना जाएगा। अगर पत्नी दूसरे विवाह के लिए सहमति दे भी दे तब भी वह विवाह ग़ैर-क़ानूनी ही होगा। ऐसी स्थिति में दूसरी पत्नी को वास्तव में पत्नी होने का कोई अधिकार नहीं मिलेगा और न ही उसे ख़र्चा प्राप्त करने का कोई अधिकार होगा। इसके साथ ही पति की संपत्ति में वह किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं रखेगी। हाँ, यदि पहली पत्नी की मौजूदगी दूसरी पत्नी से छिपाई जाती है तो दूसरी पत्नी पति के ख़िलाफ़ धोखे का मुकदमा दर्ज़ कर मुआवजा प्राप्त कर सकती है। इसके साथ ही यदि उसके द्वारा किसी बच्चे को जन्म दिया जाता है तो उसे भी जायज़ संतान को भाँति पिता की संपत्ति में वह सारे अधिकार मिलेंगे, जो जायज़ संतान को प्राप्त हैं।

**बाल विवाह संबंधी नियम और निदान**

21 वर्ष से कम उम्र के लड़के और 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की का विवाह 'बाल-विवाह' माना जाता है। ऐसा विवाह करना या कराना दोनों ही क़ानूनी रूप से अपराध



है। ऐसे अपराध के विरोध में बाल-विवाह अवरोध अधिनियम, 1929 और 1989 सक्रिय हो जाता है। इस अधिनियम की धारा (3) के तहत अपराध सिद्ध होने पर अपराधी को क़ैद और जुर्माना दोनों की सज़ा हो सकती है।

यदि 21 वर्ष से कम उम्र का लड़का और 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की का विवाह होता है तो उन्हें (लड़की-लड़की दोनों को) पंद्रह दिन की क़ैद या सौ रुपए का जुर्माना अथवा क़ैद और जुर्माना दोनों हो सकते हैं। बाल विवाह करवाने वाले माता-पिता, रिश्तेदार और पंडित आदि को भी इस अपराध के तहत तीन महीने की क़ैद और जुर्माना हो सकता है। हाँ, इस कार्य के लिए किसी महिला की माता एवं उसके पालक को क़ैद की सज़ा नहीं दी जा सकती, किंतु जुर्माना अवश्य देना पड़ता है। जिस व्यक्ति का बाल विवाह करवाया जा रहा है, उसका कोई रिश्तेदार, दोस्त या जानकार बाल विवाह के संबंध में नज़दीकी थाने में जाकर पूरी जानकारी दे सकता है। इस पर पुलिस पूछताछ करके मजिस्ट्रेट कोर्ट में केस चलाएगी और बाल विवाह साबित होने पर अपराधियों को सज़ा दी जाएगी। दंड स्वरूप बाल विवाह करने या करवाने वाले व्यक्ति को तीन महीने की क़ैद और 1000 रुपए का जुर्माना या क़ैद दोनों की सज़ा हो सकती है।

देश में बाल विवाह की रोकथाम के लिए आवश्यक है कि समय रहते स्वयं या रिश्तेदार, दोस्त आदि द्वारा मजिस्ट्रेट के पास शिकायत दर्ज़ की जाए। शिकायत दर्ज़ होने पर पुलिस ऐसे अवैध विवाह को रोकने हेतु उचित कार्यवाही करके दोषी पर सज़ा या जुर्माना के लिए केस दर्ज़ करेगी।

**विवाह-विच्छेद**

स्त्री-पुरुष के अपने-अपने निजी क़ानूनों में महिलाओं को जो क़ानूनी अधिकार प्राप्त हैं, उनमें से एक है -- 'विवाह-विच्छेद' (तलाक़)। भारतीय विवाह क़ानून में उल्लेखित है कि आख़िर एक स्त्री किन-किन आधारों पर अपने पति से तलाक़ ले सकती है जिन्हें हम निम्नांकित बिंदुओं में समझ सकते हैं --

- यदि पुरुष व्यभिचारी या दूसरी स्त्री के साथ संभोग की प्रवृत्ति रखता हो।
- यदि पति बिना किसी कारण पत्नी का परित्याग कर चला जाए। यह परित्याग पति द्वारा दो साल या इससे अधिक समय के लिए हो। उस स्थिति में भी स्त्री तलाक़ का दावा कर सकती है।
- यदि पति पत्नी के साथ क्रूरतापूर्वक शारीरिक, मानसिक या फिर किसी अन्य प्रकार का अमानवीय दुर्व्यवहार करता तो स्त्री विवाह-विच्छेद का प्रस्ताव रख विच्छेद ले सकती है।
- यदि पति पत्नी से जी चुराकर धर्म परिवर्तन कर दूसरी दुनिया का स्वप्न देखता है, तब भी स्त्री तलाक़ ले सकती है।

- यदि पति के साथ कोई अप्रिय घटना घट जाने के कारण वह पागल हो जाए या फिर पागलों की भाँति आचरण करता हो या सात वर्ष से अधिक समय से लापता हो, तब भी स्त्री विवाह-विच्छेद की माँग कर सकती है।

विवाह-विच्छेद देने वाली अदालत पत्नी को पति द्वारा कुछ निश्चित ख़र्च-रक़म देय सुनिश्चित करती है जिसे स्त्री अपनी आवश्यकता के अनुसार तय करती है। ऐसी मान्यता है कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ है। इसलिए उसे पति की आमदनी एवं संपत्ति में पूरा हक़ मिलना चाहिए। यही कारण है कि जब तक स्त्री जीवित रहती है या दूसरा विवाह नहीं कर लेती, तब तक पति उसे अदालत सुनिश्चित भुगतान ख़र्च देता रहता है। दूसरा विवाह न करने की स्थिति में यह ख़र्च देय मृत्यु पर्यंत दिया जाता है।

**मुस्लिम विवाह के अनिवार्य तत्त्व**

प्रायः मुसलमानों के विवाह मुस्लिम क़ानून के अंतर्गत संपन्न कराए जाते हैं। संपूर्ण मुस्लिम क़ानून दो भागों में बाँटा हुआ है। जिसमें सुन्नी मुसलमानों के लिए 'हनफी' क़ानून है जबकि शिया मुसलमानों के लिए 'इस्नाअशरी' क़ानून है।

मुस्लिम क़ानून के मुताबिक पहले विवाह का पैगाम या प्रस्ताव लड़के की ओर से दिया जाता है। इस पैगाम को लड़की कुबूल करती है या इंकार। यह उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। यदि पैगाम कुबूल किया जाता है तो इस पैगाम के दोनों ओर से कबूल होने की घटना को 'निकाह' कहा जाता है। यह निकाह जुबानी भी हो सकता है।

**जायज़ निकाह के विशेष ढंग**

मुस्लिम विवाह में निकाह के समय मौलवी और गवाहों की उपस्थिति अनिवार्य है। निकाह के समय मौलवी के पास एक किताब होती है जिसमें वह विवाह दर्ज़ करता है। इस किताब पर मौलवी द्वारा दूल्हा और दुल्हन दोनों के हस्ताक्षर कराए जाते हैं। उनके साथ गवाहों और अंत में मौलवी के हस्ताक्षर होते हैं।

जायज़ निकाह में मेहर की रक़म का तय होना अनिवार्य होता है, जो लड़का विवाह के समय लड़की को निकाह के बदले मेहर देता है। निकाह में मौलवी दूल्हा और दुल्हन दोनों को एक-एक पर्चा देता है। इस पर्चे पर ही बाते लिखी होती हैं जिसका जिक्र विवाह की किताब में होता है। इन पर्चों पर उन्हीं गवाहों के हस्ताक्षर होते हैं जिन्होंने निकाह की किताब में हस्ताक्षर किए थे। इस पर्चे को मुसलमानों में 'निकाहनामा' कहा जाता है।

प्रायः मुस्लिम निकाह हिंदू विवाह से भिन्न होता है क्योंकि हिंदू विवाह में विवाह का रजिस्ट्रेशन क़ानून अनिवार्य है जबकि मुस्लिमों में ऐसा नहीं होता। किंतु बेहतर होता है यदि निकाह के रजिस्ट्रेशन की लिखा-पढ़ी पूरी हो। ऐसा इसलिए, ताकि यदि कभी मियाँ-बीबी के झगड़ों के कारण अदालत जाना पड़े तो यह सिद्ध न करना पड़े की विवाहित हैं।

इस्लाम के सुन्नी मुसलमानों के निकाह पर गवाहों की मौजूदगी होना अनिवार्य है। इन गवाहों का बालिग होना भी मायने रखता है अर्थात् गवाहों की उम्र कम से कम 18 वर्ष से कम न हो। शिया मुसलमानों के विवाह में गवाहों की मौजूदगी अनिवार्य नहीं है। मुसलमानों की भाँति हिंदू विवाह में इस प्रकार की कोई अनिवार्यता नहीं।

इस प्रकार भारतीय विवाह संस्कारों में बड़ी भिन्नता है। किंतु सभी भिन्नताओं के बावजूद एक बात स्पष्ट है कि विवाह मात्र दिखावा नहीं, अपितु यह प्रेम, समर्पण, सहयोग, त्याग और सम्मान से जीवन जीने का अर्थपूर्ण आश्रम है जहाँ थोड़े में ज़्यादा और ज़्यादा में थोड़े का भाव अमर रहता है। भारतीयों में विवाह की महत्ता और उसके प्रति उत्तरदायी दायित्वों का ऐसा अनूठा सगंम है कि जिसे न चाहते हुए भी कई बार निभाना पड़ता है। संबंधों को निभाना लोगों की मज़बूरी नहीं अपितु हर रिश्ते को सवारने के लिए एक मौका देना निहित है।

संबंधों में विच्छेद की भावना तब प्रबल होती है, जब सहनशीलता की शक्ति अपना पूर्ण समर्थ्य खो बढ़ती है। भारतीय संविधान ने इन संबंधों की गरिमा और महत्त्व को बनाए रखने के लिए कुछ नियम तय किए हैं, जिन्हें विधि की दृष्टि में क़ानून कहा जाता है। यही कारण है कि यह विवाह संबंधों में खींचा-तानी बढ़ जाने पर यह क़ानून ही उन्हें सुरक्षा प्रदान करते हुए समस्त समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हैं जिसे हम तलाक़ के पूर्व पति-पत्नी दोनों को छः महीने का समय दिए जाने में देख सकते हैं। विधि द्वारा प्रत्येक प्राणी को अपनी भूल को सुधारने का एक मौका दिया जाता है ताकि समय रहते अनिष्ट को यथासंभव टाला जा सके। किंतु जब कोई भी विधिक और व्यवहारिक नियम सफल नहीं होता तब उसका निपटान विधिक नियमों द्वारा ही किया जाता है जिन्हें समाज विधिक निदान के रूप में जाता और पहचानता है। वर्तमान समय में संबंधों के विच्छेद होने की मार्मिक पीड़ा निम्न पंक्तियों में प्रकट होती है --

रिश्तों का अर्थ बदल रहा है, प्रीत नफ़रत उगल रही है,
वाचाल बना हर कोई यहाँ, अपने को सब कुचल रहे हैं,
रिश्तों की अजीब-सी उलझन, मर्यादा खंडित होती जाए
स्वछंद रहने की अखंड लालसा, हर एक को बाँट रही है...।

❑

**संदर्भ**


1. यादव वीना रानी, हिंदी उपन्यासों में स्त्री की अभिव्यक्ति : (महिला लेखन के विशेष संदर्भ में 1991 से 2000), नई दिल्ली।
2. रांका, सावित्री, भारतीय महिलाओं के जीवन का मार्मिक संघर्ष, किताब घर, प्रथम संस्करण, 1994।
3. मिश्र, महेंद्र कुमार, महिलाओं के क़ानूनी अधिकार, दिव्यम् प्रकाशन, दिल्ली, 2004।
4. Era, Bhatiani, Indian women and right of divorce, Manthan publication, Rohtak, 1997



**सुमन कुमारी** : शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. डॉ. सुदर्शन वर्मा एवं नतीश कुमार चतुर्वेदी

# मुस्लिम वैयक्तिक विधि में तीन तलाक़ तथा संविधान से प्रदत्त अधिकारों का संरक्षण : एक अवलोकन

भारत एक लोकतांत्रिक देश है जो लिखित संविधान एवं विधि शासन के अनुसार शासित किया जाता है। संविधानवाद के माध्यम से संस्थाएँ एवं सरकार संविधान के प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करते है। संविधान की दार्शनिकता हमें राजनैतिक एवं वैचारिक आकांक्षा प्रदान करने वाली है। इसका प्रथम उद्देश्य संवैधानिक लोकतंत्र स्थापित करना है जिससे समाज का उत्तरोत्तर समावेशी विकास हो सके, जिसमें महिला, पुरुष, शोषित, वंचित एवं अल्पसंख्यक सभी को समान अधिकार एवं स्थान प्राप्त हो। भारतीय संविधान स्पष्ट रूप से परिवर्तनकारी है जिसका तात्पर्य है कि विधियों का अर्थपूर्ण अर्थांवयन अर्थात् जिसमें उसका आशय एवं उद्देश्य प्रलक्षित हो ऐसा निर्वचन होना चाहिए, न कि संकुचित या केवल शाब्दिक निर्वचन किया जाना चाहिए। परिवर्तनकारी संविधानवाद में अधिकारों को मान्यता, व्यक्ति की गरिमा तथा सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त अवसर का वातावरण उपलब्ध कराया जाना सुनिश्चित किया जाता है, क्योंकि व्यक्ति को जीवन का अधिकार (Right to Life) केवल भौतिक अस्तित्व तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें मानव गरिमा को बनाए रखते हुए जीवन जीने का अधिकार सम्मिलित है।[1]

संवैधानिक नैतिकता स्वयं में कई गुणों को स्वीकार करती है, जिसमें बहुलतावादी एवं समावेशी समाज की सहभागिता भी सम्मिलित है, संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा राज्य के अंगों को प्रेरित करती है जिसमें न्यायपालिका स्वयं सम्मिलित है, जो समाज की बहुलतावादी प्रकृति को संरक्षित करने के लिए बहुसंख्यकों द्वारा आबादी के पिछड़े वर्गों के अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का हनन करने से रोकने का प्रयास करना है। संवैधानिक नैतिकता को विधि शासन (Rule of Law) में अनुमति प्रदान की जा सकती है क्योंकि संवैधानिक नैतिकता की नींव समाज की व्यापकता को मान्यता प्रदान करती है अतः सामाजिक नैतिकता के पर्दे



के पीछे व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का हनन भी नहीं किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय ने एक प्रमुख वाद[2] जो कि 22 अगस्त, 2017 को निर्णीत किया, में संवैधानिक नैतिकता को सामाजिक नैतिकता पर अधिप्रभावी करते हुए तीन तलाक़ को विभेदीकरण एवं संवैधानिक अधिकारों के हनन के आधार पर असंवैधानिक घोषित किया। न्यायालयों की भूमिका तब और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है जब किसी शोषित वर्ग या अल्पसंख्यक समूह के व्यक्तियों के अधिकार प्रभावित होते है जो अनादिकाल से अपने मूल अधिकारों से वंचित रहे है। हमारा संविधान एक गतिशील एवं जैविक दस्तावेज़ है जो समाज की बदलती ज़रूरतों और माँगों को पूर्ण करने में सक्षम है। न्यायालयों ने असमानता और अन्याय जैसी बुराइयों को समाप्त करने के लिए प्रगतिशील एवं व्यावहारिक निर्वचन (व्याख्या) को एक कर्त्तव्यरूपी शस्त्र के रूप में स्वीकार्य किया है।

किसी भी समाज के सभ्य और संवदेनशील होने का इससे तय किया जाता है कि उसका महिला एवं कमज़ोर वर्गों के प्रति व्यवहार कैसा है? परंतु ज़्यादातर समाजों में सामाजिक विकास के इस सवाल की अनदेखी की जाती है कि महिलाओं के क्या अधिकार हैं।

भारतीय संविधान के अनु. 14, 15 (3), 19 एवं 21 के अनुसार हर नागरिक चाहे वह किसी धर्म का हो या किसी भी लिंग का, सभी को समान अधिकार प्रदान करता है। यदि कोई प्रथा या विधि संविधान के भाग-3 के विरुद्ध या संवैधानिक अधिकारों के विरुद्ध है तो प्रथा प्रारंभतः शून्य मानी जाएगी। अनु. 372 द्वारा शरियत एक्ट की धारा-2 को प्रभावी एवं बने रहने वाला तभी माना जा सकता है जब वह मूल अधिकारों के विरुद्ध न हो, साथ ही अनु. 51-A (a), (e), (f) तथा (g) में अधिरोपित प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह मूल कर्त्तव्य है कि वह महिलाओं की प्रतिष्ठा में अपमानजनक प्रचलन या प्रथा को त्याग दे। तीन तलाक़ पर वास्तविकता में विरोध का मुख्य कारण पुरुष का अहम या पितृसत्तामक सोच है जो स्त्रियों को बराबरी का दर्ज़ा नहीं देना चाहते तथा सामंती तरीक़े से व्यक्तिगत मामलों को धार्मिक स्वतंत्रता की आड़ में पुरुष श्रेष्ठता का दावेदार बना रहना चाहता है।

हमारे देश में समसामयिक विमर्श है कि तीन तलाक़ जैसी प्रथा होनी चाहिए या नहीं? क्या वजह है कि भारत में आज भी तीन तलाक़ जैसी कुरीति समाप्त करने में रूढ़िवादी मुस्लिमों का एक बड़ा वर्ग डर रहा है, मुस्लिम महिलाओं को समान अधिकार देने की व्यवस्था में अपने क़दम पीछे खींच रहे हैं। दरअसल, धार्मिक स्वतंत्रता की आड़ में लैंगिक असमानता को समाज में बने रहने देने वाले वे रूढ़िवादी सोच वाले लोग है जो पितृसत्तात्मक सोच वाले समाज की अहम कड़ी है। आज विश्व के कई देशों में तीन तलाक़ समाप्त कर दिया गया है जैसे पाकिस्तान, बांग्लादेश इत्यादि में।

प्रश्न यह है कि संविधान को स्वीकार्य करने के 70 वर्ष बाद भी हम तीन तलाक़

जैसी प्रथा को समाप्त करने की स्थिति में है या नहीं? उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बावजूद भी पिछले दिनों देश के कई हिस्सों से समाचार पत्र एवं मीडिया के माध्यम से एक साथ तीन तलाक़ के मामलों में सामाजिक एवं दैहिक उत्पीड़न के कई समाचार आते रहे हैं, ऐसे में समाज के भीतर संवाद जारी रहना चाहिए, ताकि कट्टरपंथी ताक़तों को केवल सरकार का विरोध एवं धार्मिक स्वतंत्रता की आड़ में मुस्लिम समाज को पीछे ले जाने का मौका न मिले। हालाँकि अदालतों ने मुस्लिम समाज के रूढ़िवादी वर्ग को आईना दिखाने वाले और मुस्लिम महिलाओं को अधिकार देने वाले फ़ैसले बहुत पहले से देने प्रारंभ कर दिए थे, लेकिन रूढ़िवादी समूहों ने न उन्हें कभी पढ़ने की कोशिश की और न ही उन्हें समझने की। वैसे तो मुस्लिम महिलाएँ बहुत पहले से ही इस नाइंसाफ़ी पर सवाल उठा रही थी, लेकिन उनकी सुनी नहीं जा रही थी। याद करे शाहबानों[3] के साथ क्या हुआ था, तब जो संकुचित सोच वाली ताक़तें जो कर पाई उसे आज की मुस्लिम महिलाओं ने भी नकार दिया और देश की सबसे बड़ी अदालत ने भी। अभी इस तरह की कई अमानवीय प्रथाएँ हैं जिनके ख़िलाफ़ उन्हें लामबंद होना चाहिए। महिला अधिकारों के प्रश्न को धार्मिक चिंताओं के दायरे से बाहर खींचकर मानव अधिकार के प्रश्न के रूप में स्थापित करना बेहद ज़रूरी है, मानव अधिकार का प्रश्न इसलिए विचारणीय एवं महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि पुरुष सत्तात्मक विश्व में लिंग भेद की परंपरा सदियों से चली आ रही है, वस्तुतः मानव जगत् में यदि कोई प्राचीन असमानता की विभाजक रेखा है तो वह लिंग भेद (Gender discrimination) ही है। ऐसी सभी परंपराएँ जो महिला को मानव मानने से इनकार करती हों और भेदभाव पर टिकी हों, उन्हें महिलाओं को नष्ट या समाप्त कर डालना चाहिए। आज वह सवाल पूछ रही है समाज से, व्यवस्था से कि आख़िर लैंगिक असमानता के आधार पर उनके मूल मानव अधिकारों से क्यों दूर किया जा रहा है। उच्चतम न्यायालय ने साफ तौर पर मुस्लिम समाज में एक साथ तीन तलाक़ को असंवैधानिक क़रार दिया था, हालाँकि न्यायालय ने सरकार को इस पर क़ानून बनाने की सलाह दी थी। इस फ़ैसले से यह उम्मीद जगी है कि मुस्लिम महिलाओं के बीच समानता का एहसास जगाएगा और उनके सशक्तीकरण की ओर मार्ग प्रशस्त करेगा।

**2. क. तलाक़ का अर्थ :** पति-पत्नी का जीवनपर्यंत अटूट संबंध स्वस्थ एवं सुखी पारिवारिक जीवन का आधार माना जाता है, इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस्लाम की मान्यता है कि जहाँ तक संभव हो, विवाह विच्छेद, जब परिहार्य पारस्परिक प्रेम एवं सौहार्द्र पूर्णतया समाप्त हो चुका हो, तो इन्हें साथ रहने के लिए बाध्य करना भी अनुचित है। अतः इस्लाम के अंतर्गत वैवाहिक जीवन के स्थायित्व को सामान्य नियम मानकर विवाह विच्छेद केवल अपवाद के रूप में स्वीकार्य किया गया है।[4]

पुरुष प्रभुत्व वाले समाज में दांपत्य जीवन का निर्वाह मुख्यतः पति के सहयोग पर



आधारित रहता है। पति को वैवाहिक संविदा भंग करने की छूट है परंतु इस्लाम की नीति पति को इस अधिकार के अकारण प्रयोग की स्वतंत्रता देना नहीं है। इस्लाम में तलाक़ की अनुमति केवल उस स्थिति में दी गई है जब पत्नी वचन या व्यवहार द्वारा पति को आहत कर रही हो, अथवा दुष्चरित हो गई हो।[5]

अरबी शब्द 'तलाक़' का शाब्दिक अर्थ निर्मुक्त करना है। मुस्लिम विधि में तलाक़ का मतलब पति द्वारा वैवाहिक संविदा का निराकरण करना है। मुख्यतः तलाक़ तीन प्रकार का होता है, अहसन, हसन तथा तलाक़ उल बिद्दत (तीन तलाक़), अहसन एवं हसन प्रतिसंहरणीय तलाक़ होते है जबकि तलाक़ उल बिद्दत घोषणा के साथ ही अप्रतिसंहरणीय हो जाता है।

इस्लाम की नीति यह कभी भी नहीं रही है कि पति को तलाक़ का ऐसा अप्रतिबंधित अधिकार प्रदान किया जाए कि वह इसका दुरुप्रयोग कर सके, परंतु दुर्भाग्यवश, इस्लामिक नीतियों के विपरीत पति के अप्रतिबंधित अधिकार को लेकर समाज एवं न्यायालयों में मतभेद रहे हैं तथा पति इस अधिकार का दुरुप्रयोग भी करते रहे हैं उदाहरण के तौर पर तीन तलाक़।

**ख. तलाक़ उल बिद्दत या तीन तलाक :** तलाक़ उल बिद्दत को ही तलाक़ उल बेन या तीन तलाक़ भी कहा जाता है। इस तलाक़ की विषेषता यह है कि एक ही बार में उच्चारित कर दिए जाने पर तलाक़ पूर्ण हो जाता है और पति पत्नी में समझौता हो पाने की गुजाइंश नहीं रहती अर्थात् पति द्वारा तलाक़ की घोषणा होने के तुरंत बाद से ही इसे प्रभावी मान लिया जाता है तथा पति इसका प्रतिसंहरण नहीं कर सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि तीन तलाक़ एक प्रकार से अप्रतिसंहरणीय तलाक़ है। पैगंबर मुहम्मद ने इस प्रकार के तलाक़ का कभी भी अनुमोदन नहीं किया। अमीर अली के अनुसार तलाक़-उल-बिद्दत को उम्मैयाद राजाओं द्वारा प्रारंभ किया गया क्योंकि पैगंबर मुहम्मद तथा खलीफाओं द्वारा निर्धारित प्रतिबंध उन्हें असुविधाजनक लगे। तब से इस प्रकार का तलाक़ सुन्नी मुस्लिमों में प्रचलित हो गया। तलाक़-उल-बिद्दत की विशिष्टता इस बात में कि एक बार घोषणा के पश्चात् ही विवाह विच्छेद हो जाता हैं तीन तलाक़ की निम्न औपचारिकता है।

1. पत्नी के तुहरकाल (शुद्धकाल) (Period of Purity) में पति एक बार में ही तलाक़ की तीन घोषणाएँ एक साथ कर दे।
2. तीन तलाक़ देने के मंतव्य (Intension) को पति केवल स्पष्ट या व्यक्त कर दे।

**3. मुस्लिम महिला विवाह अधिकार संरक्षण अध्यादेश 2019 :** मुस्लिम महिला विवाह अधिकार संरक्षण विधेयक, 27 दिसंबर, 2018 को लोकसभा में पारित हो गया तथा पुनः राज्य सभा में यह विधेयक पारित नहीं हो सका क्योंकि विपक्ष इसे संयुक्त प्रवर समिति

को भेजने के लिए कह रहा था। चूँकि मुस्लिम महिला विवाह अधिकार संरक्षण अध्यादेश की समय सीमा 22 जनवरी, 2019 समाप्त हो रही है और संसद के शीत सत्र में पुनः विधेयक पारित नहीं हो सका। अतः केंद्रीय सरकार ने पुनः 10 जनवरी, 2019 को अध्यादेश जारी किया जिसको राष्ट्रपति ने 12 जनवरी, 2019 को स्वीकृति दे दी।

संसद के शीत सत्र में तीन तलाक़ संबंधी विधेयक पास न हो पाने के बाद अब केंद्र सरकार ने पुनः दूसरा रास्ता निकाला है, कुल तीन संशोधनों के साथ कैबिनेट ने इस पर अध्यादेश की मंजूरी दी है। छः महीने में सरकार को इसे संसद में पास कराना होगा। पूर्व में विधेयक में प्रावधान था कि केस कोई भी दर्ज़ करा सकता है, पुलिस ख़ुद भी केस दर्ज़ करके बगैर वारंट के गिरफ़्तारी कर सकती है, यह गैर ज़मानतीय संज्ञेय अपराध था जिसमें समझौते का कोई प्रावधान नहीं था। परंतु विपक्ष की माँग थी कि इसे संयुक्त प्रवर समिति के पास भेजा जाए परंतु केंद्रीय कैबिनेट ने विपक्ष की माँग ख़ारिज करते हुए अध्यादेश में कुछ संशोधन करते हुए प्रावधान किया है कि पीड़िता या उसका सगा रिश्तेदार ही केस दर्ज़ करा सकेगा, अन्य कोई बाहरी व्यक्ति और न ख़ुद से संज्ञान लेकर पुलिस। पुलिस स्टेशन पर ज़मानत नहीं दी जा सकती है अर्थात् गिरफ़्तारी तय है लेकिन इसमें मजिस्ट्रेट को ज़मानत देने का अधिकार रहेगा, इसके अलावा मजिस्ट्रेट के समक्ष पति पत्नी के आपसी समझौता का विकल्प भी खुला रहेगा, निश्चय ही मुस्लिम महिलाओं के लिए यह अध्यादेश भी मील का पत्थर साबित होने वाला है।

**4. तीन तलाक़ पर न्यायिक निर्णयों का अवलोकन :** हालाँकि न्यायालयों ने समय समय पर मुस्लिम समाज के रूढ़िवादी वर्ग को आईना दिखाने वाले एवं मुस्लिम महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों को सुरक्षित एवं संरक्षित करने वाले फ़ैसले दिए हैं परंतु रूढ़िवादी सोच वाले लोगों ने न तो उन्हें कभी पढ़ने की कोशिश की और न ही समझने की। तीन तलाक़ के संदर्भ में न्यायालयों ने इसकी औपचारिकताओं की जगह पति के प्रथम घोषणा द्वारा पूर्ण विवाह विच्छेद कर दिए जाने के मंतव्य को महत्त्व दिया है न्यायालय ने हमेशा से तीन तलाक़ जैसी कुप्रथा को अपने उदार निर्वचनों के माध्यम से हमेशा असंवैधानिक क़रार दिया है जैसे कि --

**1. मरियम बनाम मुहम्मद शमसी आलम**[6] के वाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया चूँकि पति ने क्रोध में आकर पत्नी से एक ही साँस में तलाक़ शब्द को तीन बार उच्चारित कर दिया था परंतु ग़लती को स्वीकार्य करके इद्दत काल में ही तलाक़ वापस ले लिया था। इस वाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने जल्दबाज़ी तथा क्रोध में आकर दिए गए तलाक़ को हतोत्साहित करने के लिए तलाक़ उल-बिद्दत (तीन तलाक़) के कठोर नियमों (औपचारिकताओं) का निर्वचन उदारतापूर्वक करके विवाह विच्छेद को बचा लिया था।



**2. रहमतुल्ला बनाम उ.प्र. राज्य**[7] यह वाद भूमि अधिकतम सीमा से संबंधित वाद था जिसमें मुस्लिम दंपत्ति रहमतुल्ला एवं खातुन्निसा की भूमि संपदाओं में कुछ पति रहमतुल्लाह तथा कुछ खातुन्निसा के नाम थी। पति ने अपनी पत्नी खातुन्निसा को 15 सितंबर 1969 को तीन तलाक़ दे दिया था अतः वे अलग-अलग व्यक्ति की श्रेणी में माने जाए अर्थात् इस वाद को तय करने का मुख्य आधार अभिकथित तलाक़ की वैधता का निर्धारण करना था। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि तीन तलाक़ कुरान के उपबंधों के विरुद्ध होने के कारण अवैध है। अतएव उक्त दंपत्ति का विवाह विच्छेद नहीं माना जाएगा। न्यायमूर्ति तिलहरी ने कहा कि तीन तलाक़ एक बार में एक तुहर काल में अथवा एक बैठक में अप्रतिसहरणीय तलाक़ देना इस्लाम में सुन्नत में तथा पवित्र कुरान के आदेशों के विपरीत होगा। यह भी कहा कि महिलाओं की प्रतिष्ठा एवं सम्मान में यह अपमानजनक प्रचलन को त्यागा जाए।

**3. शेख अलीमुद्दीन बनाम ताजमुननिशा**8 न्यायालय ने अवधारित किया कि, तलाक़ उल बिद्दत एक तुहरकाल में मात्र तीन उच्चारण से विवाह निराकृत करने का संकेत दे दिया जाता है, चाहे वह एक ही वाक्य में बोल दिया जाए या कई वाक्य में।

**4. शमीमआरा बनाम स्टेट आफ यू.पी.**[9] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय किया कि तलाक़ के प्रभावी (विधिमात्र) होने के लिए इसकी विधिवत् घोषणा अवश्य होनी चाहिए तथा न्यायालय ने कहा कि पवित्र कुरान द्वारा आदेशित है कि इसे किसी न्यायोचित कारण से ही किया जाना चाहिए तथा तलाक़ के पूर्व पति एवं पत्नी के मध्य सांमजस्य होने का प्रयास होना चाहिए। साथ ही न्यायालय ने एक तरफ़ा दिए गए तीन तलाक़ को ख़ारिज कर दिया।

**5. शायराबानों एवं अन्य बनाम भारत संघ**[10] उत्तराखंड के काशीपुर की शायराबानों ने 2016 में उच्चतम न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया था। साथ ही 6 और याचिकाओं पर संयुक्ततः उच्चतम न्यायालय ने विचार किया। प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली पाँच सदस्यीय संविधान पीठ ने 22 अगस्त, 2017 को अपने 365 पेज के फ़ैसले में कहा कि ''3:2 के बहुमत से दर्ज़ की गई अलग-अलग राय के आधार पर तीन तलाक़ (तलाक़-उल-बिद्दत) को असंवैधानिक क़रार दिया जाता है। तीन न्यायाधीशों के मुताबिक़ तुरंत तीन तलाक़ यानी तलाक़-उल-विद्दत यानी एक बार में तीन तलाक़ ग़ैर-क़ानूनी और इस्लाम के ख़िलाफ़ है। यह इस्लाम का हिस्सा नहीं है और इसलिए मुस्लिम समाज के लोग (पति) इस तरीक़े से तलाक़ नहीं दे सकते हैं। न्यायाधीश जोसेफ कुरियन, आर. एफ. नरीमन एवं यू.यू. ललित ने बहुमत का निर्णय देते हुए कहा कि यह प्रथा संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों का उल्लंघन करती है अतः असंवैधानिक है, जबकि अल्पमत का निर्णय मुख्य न्यायाधीश जे.एस. खेहर एवं एम. अब्दुल नज़ीर ने दिया है। न्यायाधीश जे.

एस. खेहर का मत था कि तलाक़-उल-बिद्दत धर्म की स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है क्योंकि यह 1400 वर्षों से सुन्नी (हनफ़ी) विधि का हिस्सा रहा है जो आभ्यासिक रूप में धर्म की स्वतंत्रता का भाग रहा है।

उच्चतम न्यायालय ने स्पष्टतः यह संदेश दिया कि वैयक्तिक विधि को संवैधानिक अधिकारों के ऊपर विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है, तीन तलाक़ इस्लाम का अभिन्न अंग नहीं है। इसको संविधान के अनु. 25 के आधार पर संरक्षण नहीं दिया जा सकता।

**निष्कर्ष :** किसी भी सामाजिक सुधार की आवाज़ अगर उस समाज के भीतर से उठती है और उसका हल निकाला जाता है तो ज़्यादा बेहतर रास्ता रहता है। मुस्लिम महिला संगठनों एवं मानव अधिकार कार्यकर्ताओं ने तीन तलाक़ के ख़िलाफ़ सड़क से लेकर न्यायालय तक संघर्ष किया जिसके परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय ने एक साथ तीन तलाक़ को असंवैधानिक क़रार दिया है।

दरअसल शिक्षा, जागरुकता और सुविधाओं के अभाव में किसी प्रथा को मानते जाना किसी भी समाज की मज़बूरी भी हो सकती है। परंपराओं के प्रति सख़्त आग्रह कई बार उसके मानवीय पहलू पर विचार करने और उसमें बदलाव के लिए प्रोत्साहित नहीं कर पाते है इसमें हैरानी की बात नहीं है कि कभी-कभी ऐसी घटनाएँ अकारण घट जाती है। जिसमें पत्नी से छुटकारा या दूसरा विवाह इत्यादि करने के कारण तीन तलाक़ जैसा अमानवीय व्यवहार किया जाता हैं ऐसे में दुर्गति सिर्फ़ उस महिला की होती है जो इस पीड़ा को झेलती है। सरकार एवं उच्चतम न्यायालय ने मुस्लिम महिलाओं को इस प्रथा से मुक्ति दिलाने के लिए जो क़दम बढ़ाए हैं, उन्हें महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक ऐतिहासिक क़दम माना जा सकता है।

आज भारतीय मुस्लिम महिलाओं ने देश के समक्ष यह उदाहरण प्रस्तुत किया है कि वे कैसे अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ भी सकती है और जीत भी सकती है। न्यायिक सुधार के जरिये समाज सुधार का रास्ता इस देश में पहले भी अपनाया गया है लेकिन सरकारें जिस प्रकार से पुरुषवादी सोच के आगे घुटने टेकती रही है यह भ्रम बन चुका था कि महिलाओं की लड़ाई अनंतकाल तक चलेगी। मुस्लिम महिलाएँ ये पितृसत्तात्मक समाज को धार्मिक एवं वैधानिक दोनों स्तरों पर चुनौती देने में सफल रही हैं। एक प्रकार से यह बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक जीत थी कि महिलाओं ने अपने हक़ की लड़ाई को जारी रखा था जिसके परिणामस्वरूप तीन तलाक़ (ट्रिपल तलाक़) जैसी एक प्रथा समाप्ति की ओर बढ़ रही है।

❑

**संदर्भ**


1. मेनका गांधी बनाम भारत संघ, AIR 1978, SC 597
2. शायराबानों एवं अन्य बनाम भारत संघ (2017) 9 SCC 1
3. AIR 1985 S.C. 945
4. तैयब जी, मुस्लिम विधि सं. 4, पृ. 234
5. अमीर अली मोहम्मडन लॉ खंड-2 संख्या 3 पृ. 512
6. AIR 1979, Allhabad 257
7. U.P. civil & Revenue Ceses Reporter 1994 (J) p. 530
8. 1998 DMC 233 Patna
9. AIR 2002 S.C. 3551 or (2002) 7 SCC 578
10. (2017)9 SCC 1 or Writ-Petition © No. 118 of 2016

डॉ. जनार्दन कुमार तिवारी

# भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क और न्यायालय

वर्तमान समाज में शिक्षा का स्तर बढ़ा है और महिलाएँ उच्च पदों पर कार्य कर रही है आज महिलाएँ घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर आ रही हैं। नौकरी और व्यवसाय में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है और अपनी कार्यक्षमता का लोहा मनवा रही है। महिलाओं की बढ़ती आकांक्षा और पुरुष के बराबर कार्य करने की क्षमता से पुरुषवादी मानसिक सोच में कमी आई है। इसके बाबजूद भी वर्तमान समाज में महिलाओं के प्रति अपराधों में वृद्धि हो रही है।

पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं की स्थिति भंयकर है। शरीर का हर अंग पीड़ा, दर्द से कराहता हुआ और उसके जीवन का हर पहलू नासूर बनता नज़र आता है। महिलाओं की स्थिति पर अगर ग़ौर करें तो महसूस होता है, कि समाज निरंतर प्रगति के सोपानों को छू रहा है फिर भी महिलाओं के प्रति प्रताड़ना, हिंसा, भेदभाव, शोषण, दुर्व्यवहार में कमी नहीं आ रही है।

महिलाओं के प्रति क्रूरता को भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क में दंडनीय बनाया गया है। इसमें पत्नी के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करने पर पति या उसके संबधियों को दंड से दंडित करने का प्रावधान है। दांडिक प्रावधान के बाबजूद भी पति या पति के रिश्तेदारों द्वारा किसी-न-किसी रूप में क्रूरता का व्यवहार पत्नी के प्रति किया जाता रहा है।

क्रूरता से तात्पर्य है कि ऐसे किसी को जानबूझकर किए गए व्यवहार को सम्मिलित किया जा सकता है जो किसी विवाहित स्त्री को गंभीर शारीरिक चोट पहुँचाए या उसके जीवन के लिए ख़तरा बन जाए या उसके शरीर के किसी अंग या स्वास्थ्य को हानि पहुँचाए या उसको आत्महत्या करने के लिए बाध्य करे। इस प्रकार के शारीरिक और मानसिक क्रियाकलाप को क्रूरता की श्रेणी में मान्यता प्रदान की गई है।

इस प्रकार, किसी विवाहित स्त्री को किसी मूल्यवान् संपत्ति या प्रतिभूति की माँग



को जबरन मनवाने या उन्हें ऐसी माँग पूरी न कर पाने पर मानसिक या शारीरिक रूप से प्रताड़ित कर महिलाओं को क्रूरता का शिकार बनाया जाता है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क में किसी स्त्री के पति या पति के नातेदारों द्वारा उस स्त्री के प्रति क्रूरता को दंडनीय बनाया गया है। इस धारा के अनुसार ''जो कोई, किसी स्त्री का पति या पति का नातेदार होते हुए, ऐसी स्त्री के प्रति क्रूरता करेगा वह कारावास से जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।''[1]

क्रूरता को इस धारा के प्रयोजनों के लिए स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जानबूझकर किया गया कोई ऐसा आचरण जो इस प्रकृति का हो, जिससे उस स्त्री की आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करना या, उस स्त्री को आत्महत्या के लिए प्रेरित करे उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वास्थ्य को चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक हो, गंभीर क्षति का ख़तरा होने की संभावना हो, उस स्त्री को इस रूप में तंग करना कि उसका या उसके किसी नातेदार को किसी संपत्ति या मूल्यवान् प्रतिभूति की कोई माँग पूरी करने के लिए प्रताड़ित किया जाए या किसी स्त्री को इस कारण तंग करना कि उसका कोई नातेदार ऐसी कोई माँग पूरी करने में असफल रहा है।

क्रूरता में स्वयं उस स्त्री के जीवन, अंग या स्वास्थ्य को मानसिक या शारीरिक रूप से क्षति पहुँचती है और वह आत्महत्या करने के लिए क़दम बढ़ाती है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन किसी स्त्री के पति या पति के नातेदार द्वारा उस स्त्री के प्रति क्रूरता को दंडनीय बनाया गया है। इस धारा को 1983 में आपराधिक विधि (द्वितीय) संशोधन अधिनियम द्वारा दहेज मृत्यु संबंधी मामलों से निपटान के लिए जोड़ा गया है। इस धारा को भारतीय दंड संहिता में लाने का मुख्य उद्देश्य किसी महिला का उसके पति अथवा पति के संबंधियों द्वारा दहेज हेतु प्रताड़ित किए जाने से महिला को सुरक्षा प्रदान करना है। पति या पति के नातेदारों संबंधियों द्वारा किसी महिला को दहेज हेतु प्रताड़ित करना क्रूरता कहा जाएगा जो भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क द्वारा दंडनीय होगा।

दंड विधि संशोधन अधिनियम, 1983 द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 में धारा 113-क तथा आपराधिक दंड संहिता 1974 में धारा 198-क जोड़ा गया है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 113-क में किसी विवाहित स्त्री द्वारा विवाह के सात वर्ष के अंदर आत्महत्या के दुष्प्रेरण की उपधारणा को प्रावधानित किया गया है। इसके अनुसार, जब प्रश्न यह है कि किसी स्त्री द्वारा आत्महत्या करना उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित किया गया है और यह दर्शित किया गया है कि उसने अपने विवाह की तारीख़ से सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या की थी और यह कि उसके पति या पति के ऐसे नातेदारों ने उसके प्रति क्रूरता की थी तो न्यायालय मामले की सभी

परिस्थियों को ध्यान में रखते हुए यह उपधारणा कर सकेगा कि ऐसी आत्महत्या उसके पति या पति के ऐसे नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित की गई थी।

इस धारा के प्रयोजन के लिए क्रूरता का वही अर्थ होगा जो भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क में वर्णित है। विवाहित स्त्री के प्रति क्रूरता कारित होने पर, इस अपराध का संज्ञान न्यायालय कब करेगा, इसके लिए उपबंध धारा 198-क आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 में किया गया है। धारा 198-क में भारतीय दंड संहिता की धारा 498 के अधीन अपराधों का अभियोजन के बारे में कहा गया है कि कोई न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान ऐसे अपराध को गठित करने वाले तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर अथवा अपराध से व्यथित व्यक्ति द्वारा या उसके पिता, माता, भाई, बहिन द्वारा या उसके पिता अथवा माता के भाई या बहिन द्वारा किए गए परिवाद पर या रक्त विवाह या दत्तक ग्रहण द्वारा उससे संबंधित किसी अन्य व्यक्ति द्वारा न्यायालय की इज़ाज़त से किए गए परिवाद पर ही करेगा अन्यथा नहीं।

क्रूरता ऐसा आचरण होता है जिससे दूसरे का जीवन, शरीर या अंग के लिए ख़तरा उत्पन्न हो जाता है। क्रूरता मानसिकता या शारीरिक हो सकती है। क्रूरता के अंतर्गत कैसा आचरण आएगा यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। वर्तमान समय में महिलाओं के साथ क्रूरता का आचरण आम बात है। प्रत्येक समाज में महिलाओं के साथ क्रूरता होती है इससे कोई भी महिला अछूती नहीं है, वह क्रूरता को मन-ही-मन सहन करती रहती है शारीरिक हानि, हिंसा, मारपीट, धमकी, ताना मारना, ठोकर मारना आदि आचरण क्रूरता की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। धारा 498-क के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त को पीड़िता स्त्री का पति या पति के नातेदार होना चाहिए और ऐसा होते हुए ही उसके द्वारा स्त्री के प्रति क्रूरता की जानी चाहिए।

**क्रूरता के लिए**

(क) जानबूझकर किया गया इस प्रकृति का आचरण जो उस स्त्री को आत्महत्या करने के प्रेरित करने की या उस स्त्री के जीवन अंग, मानसिक या शारीरिक स्वास्थ्य को गंभीर क्षति या ख़तरा कारित करने की संभावना हो; या

(ख) उस स्त्री को इस दृष्टि से तंग करना कि उसको या उसके किसी नातेदार को संपत्ति या मूल्यवान् प्रतिभूति की माँग पूरी करने के लिए प्रताड़ित किया जाए या उसे उस कारण तंग करना कि उसका नातेदार ऐसी माँग पूरी करने में असफल रहे, क्रूरता है।

निम्नलिखित कृत्यों को क्रूरता माना गया है[2] --

(1) स्त्री या वधू के साथ दुर्व्यवहार करना।

(2) स्त्री या वधू को मानसिक पीड़ा पहुँचना।



न्यायालयीन निर्णयों में भिन्न प्रकार के क्रियाकलापों/कार्यों को क्रूरता की श्रेणी में माना गया है :--

1. एक-दूसरे को तंग करने वाली मुकदमेबाज़ी।
2. पत्नी एवं मासूम बच्चों को मूल आवश्यकताओं से वंचित रखना।
3. पत्नी को बाँझ महिला की संज्ञा देना।
4. परस्त्री से संबंध रखना।
5. पत्नी को सताना और निर्दयता का व्यवहार करना।
6. दहेज की माँग के लिए सताया जाना।
7. सतीत्व पर मिथ्या प्रहार एवं तंग करना इत्यादि।

महिलाओं के प्रति क्रूरता के अपराधों में निरंतर वृद्धि हो रही है। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध धारा 498-क के तहत पंजीकृत अपराधों की कुल संख्या वर्ष 2016 में 1,10,378 है।

**सारणी-1**

वर्ष 2008-2016 के बीच भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के तहत पंजीकृत मामले :

| क्र. | वर्ष | धारा 498-क के तहत पंजीकृत मामलों की संख्या | मामलों की संख्या जिसमें विचारण पूर्ण हो गया है | दोष सिद्धि मामलों की संख्या | मामलों की संख्या जिसमें दोषमुक्ति अथवा उन्मोचन हो गया है | वर्ष के अंत लंबित वादों की संख्या |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | 2008 | 81344 | 34347 | 7710 | 26637 | 251759 |
| 2. | 2009 | 89546 | 37323 | 7380 | 29943 | 278921 |
| 3. | 2010 | 94041 | 40751 | 7764 | 32987 | 309991 |
| 4. | 2011 | 99135 | 40338 | 8167 | 32171 | 339902 |
| 5. | 2012 | 106527 | 46054 | 6916 | 39138 | 372706 |
| 6. | 2013 | 118866 | 45423 | 7258 | 38165 | 412438 |
| 7. | 2014 | 122877 | 46853 | 6425 | 40428 | 443878 |
| 8. | 2015 | 113403 | 46127 | 6559 | 39568 | 477986 |
| 9. | 2016 | 110378 | 44681 | 5433 | 39248 | 515904 |

(# स्रोत नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो से प्राप्त आँकड़े)

**सारणी-2**

वर्ष 2008-2016 के बीच धारा 498-क के तहत गिरफ़्तार व्यक्तियों की संख्या #

| क्र. | वर्ष | गिरफ़्तार पुरुषों की संख्या | गिरफ़्तार महिलाओं की संख्या | भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के तहत कुल गिरफ़्तारी | गिरफ़्तार पुरुषों का प्रतिशत | गिरफ़्तार महिलाओं का प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | 2008 | 127492 | 37369 | 164861 | 77.3 | 22.7 |
| 2. | 2009 | 133044 | 41351 | 174395 | 76.3 | 23.7 |
| 3. | 2010 | 139334 | 41079 | 180413 | 77.2 | 22.8 |
| 4. | 2011 | 139403 | 41298 | 180701 | 77.1 | 22.9 |
| 5. | 2012 | 149811 | 47951 | 197762 | 75.8 | 24.2 |
| 6. | 2013 | 174620 | 47471 | 222091 | 78.6 | 21.4 |
| 7. | 2014 | 181430 | 44218 | 225648 | 80.4 | 19.6 |
| 8. | 2015 | 151334 | 35733 | 187067 | 80.9 | 19.1 |
| 9. | 2016 | 160034 | 38817 | 198851 | 80.5 | 19.5 |

(# स्रोत नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो से प्राप्त आँकड़े)

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि धारा 498-क के तहत पंजीकृत मामलों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इसी प्रकार धारा 498-क के तहत दोष मुक्ति तथा दोष सिद्धि भी हो रही है। आपराधिक मामलों में दोष सिद्धि इस ओर संकेत कर रही है कि धारा 498-क का दुरुपयोग भी हो रहा है, या लोगों को जान-बूझकर मामलों में घसीटा जा रहा है।

**पी. कृष्णमूर्ति बनाम राज्य 1994 क्रि.लॉ.ज. (आंध्र प्रदेश)** के मामले में दहेज की माँग पूरी नहीं करने के विरुद्ध मृतक को उसके पति और सास के द्वारा तंग किया जाता था, यातना दी जाती थी और दुर्व्यवहार किया जाता था। न्यायालय ने अभियुक्तों की धारा 498-क के अधीन दोषसिद्धि को उचित माना।

**भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क की संवैधानिक वैधता :** भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क की संवैधानिक बाध्यता पर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने



**किशनलाल बनाम राज्य 1994 क्रि.लॉ.ज. 3472 (पंजाब और हरियाणा)** में अभिनिर्धारित किया है कि धारा 498-क भारतीय संविधान के उपबंधों का उल्लंघन नहीं करती है। किसी विवाहित स्त्री का पति और पति के नातेदार अपने आप में एक वर्ग की कोर्ट बनाते हैं विशेषतः तब जब एक विवाहित स्त्री के साथ उसके पति नातेदार द्वारा चहारदीवारी के भीतर क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता है जहाँ पर किसी प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध होने की संभावना नहीं रहती है।

इसी प्रकार से दिल्ली उच्च न्यायालय ने **इंदर राज मलिक बनाम सुनीता मलिक 1996 क्रि.लॉ.ज. 1510 (दिल्ली)** के वाद में कहा कि धारा 498-क भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 20(2) के उपबंधों का उल्लंघन नहीं करती है।

उच्चतम न्यायालय ने **सुशील कुमार शर्मा बनाम भारत संघ (2005) 6एससीसी281** के मामले में धारा 498-क की वैधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि इस धारा का अभियुक्त के विरुद्ध दुरुपयोग किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 498-क विधिमान्य और संवैधानिक है और चुनौती को मान्य नहीं किया। यदि विधि के किसी उपबंध का दुरुपयोग किया जाता है या विधिक प्रक्रिया का उल्लंघन किया जाता है या कुप्रयोग होता है तो विधायिका उसका संशोधन, परिवर्तन या निरसन कर सकती है यदि ऐसा वह उचित समझती है।

**सतीश कुमार बत्रा एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य (2009) क्रि.लॉ.ज. 2447 (एस. सी.)** के मामले में कहा है कि मात्र इस कारण कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन पत्नी के प्रति क्रूरता के अपराध का दुरुपयोग होगा, इस धारा को असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता है।

क्रूरता की संकल्पना भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क एवं धारा 306 का प्रभाव अलग-अलग व्यक्तियों में उस व्यक्ति के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के ऊपर निर्भर करता है। कोई कृत्य क्रूरता की श्रेणी में आएगा या नहीं, यह तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। क्रूरता का केवल शारीरिक होना आवश्यक नहीं, बल्कि यह मानसिक भी हो सकता है। सामान्यतः कभी-कभी असामान्य व्यवहार भी क्रूरता एवं उत्पीड़न की श्रेणी में आ सकता है।

**पी. के. रावल बनाम स्टेट ऑफ गुजरात (2013) ए.आई.आर. एस.सी.डब्लू. 5219** में न्यायालय ने कहा कि मानसिक क्रूरता उस व्यक्ति की धैर्य एवं क्रूरता की तीव्रता पर निर्भर करती है। कुछ लोग साहस के साथ सहते हैं, कुछ चुपचाप सहते हैं जब क्रूरता असहनीय हो जाती है तो कमज़ोर व्यक्ति अपने जीवन का अंत करने का भी सोच सकते हैं।

**पी. विक्षापंथी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 1989 क्रि.लॉ.ज. 1186 (आ.प्र.)** के मामले में पत्नी ने आत्महत्या कर ली थी इस कारण से कि पति या पति के माता-पिता, दहेज

न लाने के लिए तंग करते थे और दुर्व्यवहार भी करते थे। इसके साथ ही पति को शराब पीने की लत थी और कभी-कभी वह अधिक शराब पीने से बेहोश होकर गिर जाता था और देर रात आने पर पत्नी की आपत्ति करने के बाद मारता-पीटता था। इन कृत्यों से परेशान होकर पत्नी ने केरोसिन छिड़क कर आग लगाकर आत्महत्या कर ली। न्यायालय ने निर्णय किया कि पति का शराब पीकर घर आना स्वयंमेव क्रूरता नहीं है परंतु इस के साथ पत्नी को मारना एवं दहेज की माँग करना, तंग करना क्रूरता गठित करता है और धारा 498-क के अधीन अपराध है।

**मिलिंद भगवान राव गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (2009) 2 क्रि.लॉ.ज. 1736 (सु.को.)** के मामले में मृतक पत्नी द्वारा पति के द्वारा क्रूरता का वर्ताव करने पर आत्महत्या करने का आरोप था। पति ने अपने बचाव में तर्क दिया कि मृतका उच्च-स्तर की शिक्षा प्राप्त महिला थी और जीवन के सभी विलासितापरक सुख प्राप्त न करने के कारण कुंठाग्रस्त रहती थी। मृतका के पिता, बहिन, पड़ोसी के साक्ष्य द्वारा एवं उसके पत्रों से मालूम होता है कि पति-पत्नी के साथ क्रूरतापूर्वक व्यवहार करने से उसको आनंद की प्राप्ति होती थी। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य संकेत करते थे कि अतिशय मानसिक क्रूरता और उत्पीड़न के कारण मृतका ने अपना जीवन समाप्त करने के लिए बाध्य हो गई थी। अतः न्यायालय ने पति की दोष सिद्धि को उचित माना।

**गिरधर शंकर तबाड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य 2002 क्रि.लॉ.ज. 2814 (सु.को.)** में न्यायालय ने कहा कि धारा 498-क के अधीन आरोप सिद्धि के लिए निश्चयात्मक साक्ष्य आवश्यक है जिसके बिना आरोप सिद्ध नहीं माना जा सकता है।

**हंसराज बनाम हरियाणा राज्य 2004 क्रि.लॉ.ज. 1759 (सु.को.)** के मामले में अभिनिर्धारित किया गया मात्र कि यह तथ्य कि किसी महिला ने विवाह के सात वर्ष के भीतर आत्महत्या कर ली है और उसके पति द्वारा उसके साथ उत्पीड़न एवं क्रूरता का व्यवहार किया है, यह उप-धारणा नहीं की जा सकती है कि पति ने आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरित किया था। मामले के सभी पहलुओं को देखने के पश्चात् एवं अन्य सुसंगत परिस्थितियों को भी विचार में रखना होगा।

कोई व्यक्ति दूसरे के प्रति कठोरतापूर्वक व्यवहार, क्रूरतापूर्वक व्यवहार का दोषी है या नहीं, यह तथ्य का प्रश्न है। किसी व्यक्ति पर शिकायत, आरोप या शब्दों तीनों का प्रभाव किसी व्यक्ति पर क्रूरता के समतुल्य पड़ता है या नहीं, यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है, जैसे शिक्षा, सामाजिक पृष्ठभूमि, पारिवारिक वातावरण, संवेदनशीलता, परिपक्वता आदि। इसी प्रकार, मानसिक क्रूरता का प्रत्येक व्यक्ति पर भिन्न-भिन्न प्रभाव हो सकता है जो उसकी संवेग क्षमता, संवेदना तथा क्रूरता को सहने का साहस व धैर्य पर निर्भर करेगा।[3] (मोहम्मद हुसैन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2002 क्रि.लॉ.ज. 1424 (एस.सी..))



**सरोजक्षण शंकरन नायर बनाम राज्य (1995) क्रि.लॉ.ज. 340 (मुंबई)** के वाद में मुंबई उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के द्वारा अभियुक्त पति की धारा 498-क के अधीन की गई दोष सिद्धि को उचित ठहराया । इस वाद के तथ्य इस प्रकार हैं। मृतक पत्नी एक रूढ़िवादी एवं सम्मानीय परिवार से ताल्लुक रखती थी। उसका पति बहुत शकांलु प्रवृत्ति का था। पति ने पत्नी को नीचा दिखाकर, अपमानित कर, उसे वेश्या कह कर उसे अन्य व्यक्ति से नहीं मिलने देता था और उसको पारिवारिक जीवन और आराम न देकर उसका जीवन दूभर कर दिया था। इस मामले में बंबई उच्च न्यायालय ने क्रूरता शब्द की व्याख्या धारा 498-क के संदर्भ में करते हुए कहा कि पत्नी के प्रति क्रूरता से तात्पर्य यह है कि पत्नी के मन में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो जाए कि पति के पास रहना उसके जीवन के लिए कष्टप्रद एवं हानिकारक हो सकता है। अतः स्वाभाविक है कि क्रूरता के बारे में निर्णय लेते समय न्यायालय को पति पत्नी के बीच वैवाहिक संबंधों पर विचार करना होगा और साथ ही उसके स्वभाव, शारीरिक एवं सांस्कृतिक प्रास्थिति या हैसियत तथा व्यावहारिक जीवन में एक-दूसरे के प्रति भावना आदि को भी विचार में लेना होगा।

**क्रूरता के अपराध का शमनीय योग्य होना :** भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के अधीन अपराध शमनीय है। आंध्र प्रदेश में धारा 498-क का अपराध शमनीय है जो कि राज्य संशोधन के द्वारा इसे शमनीकरणीय बनाया गया है।

**राजस्थान राज्य बनाम गोपीलाल (1992) क्रि.लॉ.ज. 273 (राजस्थान)** के वाद में पत्नी ने पति द्वारा उसके प्रति किए गए क्रूरतापूर्ण व्यवहार को माफ़ करते हुए उसके साथ जीवन निर्वाह शुरू कर दिया था। न्यायालय ने कहा कि धारा 498-क के अपराध में पक्षकार आपसी सहमति से अपराध का शमन कर सकते हैं। इसमें न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जहाँ पति और उसके नातेदारों द्वारा पत्नी को प्रताड़ित किए जाने का तथ्य सिद्ध हो चुका हो तो उसके बीच दांपत्य अधिकारों का बहाली के पृथक् सिविल वाद में क्रूरता का अपराध साबित न हो पाना आपराधिक कार्यवाही पर किसी प्रकार का विपरीत प्रभाव नहीं डालता है और अभियुक्त को धारा 498-क के अधीन दंडित किया जा सकेगा।

आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने **थाथापाड़ी वैंकट लक्ष्मी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1991) क्रि.लॉ.ज. 749 (आंध्र प्रदेश)** के मामले में धारा 498-क के अपराध को शमनीय निरूपित किया है और कहा कि यदि आरोप पत्र पुलिस द्वारा फाइल किया गया हो तो अभियुक्त की प्रताड़ित पत्नी उसे वापस नहीं ले सकती है।

इसी प्रकार, **डी. जयलक्ष्मी बनाम राज्य 1993 क्रि.लॉ.ज. 3162(आंध्र प्रदेश)** के वाद में अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 498-क के अंतर्गत परिवाद में पति और पत्नी के बीच समझौता अनुज्ञेय है यद्यपि कि अपराध अशमनीय है। न्यायालय ने कहा कि केवल अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में उच्च न्यायालय अपनी-अपनी अंतर्निहित शक्तियों

के अधीन अशमनीय अपराध के प्रशमन की अनुज्ञा दे सकता है।

**रामगोपाल बनाम स्टेट ऑफ मध्य प्रदेश (2011) क्रि.लॉ.ज. (सप्ली)86 (एस.सी.)** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने सुझाव दिया कि केंद्रीय सरकार और विधि आयोग को धारा 498-क के अपराध को शमनीय और ज़मानतीय बनाने पर विचार करना चाहिए।

धारा 498-क के अपराध के अंतर्गत सभी प्रकार की प्रताड़नाएँ सम्मिलित नहीं हैं। इस अपराध के लिए निश्चयात्मक रूप से साबित करना आवश्यक है कि पति द्वारा या उसके नातेदारों द्वारा मारपीट कारित किया गया है, या प्रताड़ित किया गया है, या दहेज की माँग या अन्य कोई माँग की गई हो जिसके कारण वह तंग आकर आत्महत्या करने को विवश हो जाती है।

यदि कोई व्यक्ति धारा 498-क में वर्णित क्रूरतापूर्ण व्यवहार अपनी रखैल पत्नी के प्रति करता है जो उसे आत्महत्या करने के लिए उत्प्रेरित कर दे तो उस व्यक्ति को धारा 498-क के अधीन अपराध के लिए दंडित किया जाएगा।[4]

**अरनेश कुमार बनाम बिहार राज्य (2014) क्रि.लॉ.ज. 927 (बिहार)** के मामले में यह व्यवस्था दी गई थी कि बगैर किसी ठोस कारण के पुलिस द्वारा धारा 498-क के मामले में गिरफ़्तारी न की जाए।

**ललिता कुमारी बनाम बिहार राज्य (2014)2 एस.सी.सी. 1** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने गिरफ़्तारी और जाँच से संबधित दिशा निर्देश जारी किए जिसमें न्यायालय ने कहा है कि किस प्रकार और किन मामलों में प्रारंभिक जाँच किया जाए, यह प्रत्येक मामले में तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। वैवाहिक विवाद, पारिवारिक विवादों में प्रारंभिक जाँच की जानी चाहिए जो एक निश्चित समय से अधिक नहीं होनी चाहिए यह सीमा सात दिन की हो सकती है। बिना प्रारंभिक जाँच के धारा 498-क के अधीन गिरफ़्तार किसी को नहीं किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने **श्रीमती राजरानी बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) ए.आई.आर. 2000 एस.सी.सी. 3559** के मामले में अभिनिर्धारित किया कि धारा 498-क में क्रूरता के अपराध के लिए न्यायालय को आरोप/अभियोग की गंभीर प्रकृति और उसको युक्ति-युक्त संदेह से परे सिद्ध होना चाहिए।

**प्रीति गुप्ता और अन्य बनाम झारखंड राज्य (2010)7 एस.सी.सी. 667** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने संपूर्ण प्रावधानों का गंभीर रूप से पुनरावलोकन करने का निर्देश दिया। कई सारे मामले को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया जाता है, बहुत सारे मामले में पीड़िता के प्रति झुकाव दिखता है। आपराधिक परीक्षण से लोगों को अत्यधिक पीड़ा से गुज़रना पड़ता है। अपराध से बरी होने के बाद बदनामी का दाग़ धुल नहीं पाता है जिससे समाज में अव्यवस्था फैल जाती है और शांति एवं सामंजस्य और समाज की खुशी को प्रभावित



कर रही है। अब समय आ गया है जब क़ानून को व्यवहारिक रूप से विचार कर आवश्यक परिवर्तन किया जाए। क़ानून में परिवर्तन लोकतंत्र और व्यवहारिक सत्यता को विचार का क़ानून के प्रावधानों में आवश्यक परिवर्तन करना चाहिए।

उच्चतम न्यायालय के निर्देश पर भारतीय विधि आयोग ने अपनी 243वीं प्रतिवेदन में निम्न सुझाव दिए है :[5]

1. धारा 498-क को शमनीय बनाया जाए।
2. अपराध को अज़मानतीय ही रहना चाहिए। परंतु मनमानीपूर्ण एवं अनुचित गिरफ़्तारी से बचने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता धारा-41 व 41-क की शर्तों का पालन किया जाना ज़रूरी है।
3. पुलिस विभाग में इसके निगरानी का तंत्र हो ताकि भारतीय प्रक्रिया संहिता की धारा 498-क के मामलों पर नियंत्रण रखा जा सके एवं दिशा निर्देश का पालन हो सके।
4. अभियोजन एवं न्यायालय को धारा 498-क के मामलों का यथाशीघ्र विचारण/निपटारा पर ध्यान देने की आवश्यता है।

उच्चतम न्यायालय ने **राजेश शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017) क्रिमिनल अपील संख्या 1265 का 2017** के मामले में न्यायामूर्ति आदर्श कुमार गोयल व उदय उमेश ललित की खंडपीठ द्वारा दिनांक 27 जुलाई, 2017 को निर्णय दिया गया, जिसमें धारा 498-क के अपराध के लिए कुछ मार्गदर्शक नियम प्रतिपादित किए थे जिनका पालन करना ज़रूरी है। जो निम्न प्रकार से है।

1. प्रत्येक ज़िले में एक या अधिक परिवार कल्याण समिति स्थापित की जाएगी जिस समिति में तीन सदस्य होगे। इस समिति की स्थापना ज़िला विधिक सेवा प्राधिकरण करेगी। ज़िला विधिक सेवा प्राधिकरण का अध्यक्ष/चेयरमैन उस ज़िले का, ज़िला एवं सत्र न्यायाधीश होगा। समिति में पैरा लीगल वालटियर्स/सोशल वर्कर/सेवानिवृत्त व्यक्ति/कार्यरत ऑफिसर की पत्नी या अन्य नागरिक जो उपर्युक्त इच्छुक हो, हो सकते है। समिति के सदस्यों को गवाहों के रूप में नहीं बुलाया जाएगा। धारा 498-क के अधीन हर शिकायत जो पुलिस को प्राप्त हुई है या मजिस्ट्रेट को की गई है समिति को संदर्भित की जाएगी जो उसको देखेंगे। समिति के सदस्य पक्षकारों से व्यक्तिगत रूप से या टेलीफ़ोन के माध्यम से या किसी अन्य माध्यम से बातचीत कर सकती है। समिति द्वारा रिपोर्ट शिकायत दर्ज़ होने की तारीख़ से एक महीने के भीतर प्रस्तुत की जाएगी। समिति मामले के तथ्यों एवं अपनी राय की संक्षिप्त रिपोर्ट दे सकते हैं। समिति की रिपोर्ट आने तक गिरफ़्तारी नहीं की जाएगी। अन्वेषण अधिकारी और मजिस्ट्रेट उस रिपोर्ट के अनुसार कार्यवाही करेंगे।
2. यदि किसी मामले में पक्षकारों के बीच समझौता हो जाता है तो ज़िला एवं सत्र

न्यायाधीश उस मामले में कार्यवाही को बंद कर सकते हैं यदि मामला पारिवारिक जुदाई का है।

3. यदि लोक अभियोजन अधिकारी को एक दिन का नोटिस देकर ज़मानत की अर्ज़ी न्यायालय में प्रस्तुत की जाती है तो जहाँ तक संभव हो, ज़मानत की अर्ज़ी पर सुनवाई उसी दिन की जाएगी। विवादित दहेज का सामान मिलना ज़मानत से इनकार करने का आधार नहीं होगा। यदि पत्नी और नाबालिग बच्चों का रख-रखाव या अन्य अधिकार को अन्यथा संरक्षित किया जा सकता है। ज़मानत के मामलों पर विचार करते समय व्यक्ति भूमिका, प्रथम दृष्टया आरोप की सत्यता, गिरफ़्तारी की आवश्यकता, अभिरक्षा और न्यायिक हित को पर्याप्त महत्त्व दिया जाएगा।
4. रेड कार्नर नोटिस और पासपोर्ट की जब्ती ऐसे मामलों में जिसमें पक्षकार भारत से बाहर निवास करते है सामान्यतः नही किया जाएगा।
5. यह दिशा-निर्देश दृश्यमान शारीरिक चोटों एवं मृत्यु से संबधित मामलों में लागू नहीं होंगे। उपरोक्त दिशा-निर्देश विचारण न्यायालय के अन्य न्यायालय को पालन करते हुए अपने विवेक और मामले की कोटि के आधार पर निर्णय करे।

**राजेश शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में धारा 498-क के दुरुपयोग को रोकने हेतु विहित दिशा-निर्देश को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **सोशल एक्शन फोरम फॉर मानव अधिकार बनाम भारत संघ** (Social Action Fourm for Manav Adhikar Vs Union of India (Writ Petition Civil) 73 of 2015 (2018) के मामले में न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा, ए.एम. खानविलकर, डॉ. डी. वाई. चंद्रचूर्ण की खंडपीठ ने दिए गए दिशा निर्देश को हटा दिया गया है, उच्चतम न्यायालय ने नए दिशा-निर्देश दिया है जो इस प्रकार है :--

1. परिवार कल्याण समिति एक अतिक्ति न्यायिक प्राधिकार है जो मजिस्ट्रेट और पुलिस की तरह अपनी शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकती है।
2. धारा 498-क का मामला संज्ञेय और अज़मानतीय है। अतः पुलिस को बिना वारंट के अभियुक्त को गिरफ़्तार करने की शक्ति है। यदि उपर्युक्त कारण है तो पुलिस शिकायत प्राप्त होने पर अभियुक्त/अभियोगी को गिरफ़्तार कर सकती है लेकिन उसे अपराध प्रक्रिया संहिता की धारा 41 का पालन करना होगा।
3. अग्रिम ज़मानत या ज़मानत देने की शक्ति न्यायालय की होगी।
4. धारा 498-क का मामला अशमनीय है इसलिए ज़िला एवं सत्र न्यायाधीश ऐसे मामलों में समझौता होने पर कार्यवाही को बंद कर सकते है पक्षकारों के बीच समझौता होने पर उनकी अर्ज़ी संबधित उच्च न्यायालय में लगानी होगी जो आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अनुसार कार्यवाही को बंद करने का आदेश करेगा।
5. दहेज का सामान मिलना ज़मानत को अस्वीकार करने का आधार नहीं माना जाएगा।
6. रेड कार्नर नोटिस और पासपोर्ट की जब्ती सामान्यतः नहीं की जाएगी। न्यायालय अपने विवेक से मामलों को मेरिट के आधार पर निर्णय करेंगे।
7. राज्य के पुलिस महानिदेशक को आदेश किया गया है कि धारा 498-क के तहत जाँच अधिकारी/अन्वेषण अधिकारी को ट्रेनिग देकर सक्षम/ट्रेंड बनाया जाए जो जाँच/अन्वेषण करे अपराध प्रक्रिया संहिता की धारा 41 व 41-क का पालन करना सुनिश्चित हो।
8. न्यायालय की कार्यवाही में दूर से आने वाले पक्षकारों को कार्यवाही में शामिल होने से छूट दी जा सकती है। लेकिन इसके लिए नियमानुसार आवेदन प्रस्तुत करना होगा।
9. उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया है कि धारा 498 क का दुरुपयोग हो रहा है और इसमें कुछ तकनीकी ख़ामियाँ है।

महिलाओं के प्रति क्रूरता पर न्यायालय ने अनेक मामलों में यह स्वीकार किया है तथा कहा है कि धारा 498-क का पक्षकारों द्वारा दुरुपयोग किया जाता है। किसी एक पक्षकार की ग़लती/दोष के कारण पूरे परिवार पर, रिश्तेदारों संबंधियों पर आरोप लगाकर उसको परेशान करने की ज़्यादा इच्छाएँ रहती हैं। न्यायालय के समक्ष कभी कभी भ्रामक शिकायत आती है जो सामान्य प्रकृति की होती है।

सामान्यतः यह धारणा है कि धारा 498-क का दुरुपयोग महिलाओं द्वारा अपने ससुराल वालों के ख़िलाफ़ एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह आँकड़ा उपलब्ध नहीं है कि इस धारा का कितनी बार दुरुपयोग हुआ है। कई मामलों में न्यायालय इस ग़लत धारणा को ख़ारिज करते हुए आगे बढ़ा है और कहा है कि स्वयं के प्रति दुरुपयोग इस दंडात्मक प्रावधान को निरस्त करने का आधार नहीं हो सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने **सोशल एक्शन फोरम फॉर मानव अधिकार बनाम भारत संघ** में कहा है कि धारा 498-क विशेष रूप से क्रूरता और उत्पीड़न का शिकार हुए समाज में कमज़ोर वर्गों की सुरक्षा के लिए प्रावधानित किया गया है। जिस सामाजिक उद्देश्य से धारा 498-क को प्रावधानित किया गया है वह अपनी कठोरता खो रहा है अपराध को जो विभिन्न योग्यताओं और प्रतिबंधों के अधीन रहते हुए ज़मानतीय बना दिया गया है।

## निष्कर्ष

भारतीय दंड संहिता/अन्य में कठोर होने के बाबजूद भी देश में महिलाओं के प्रति क्रूरता उत्पीड़न और दुर्व्यवहार की बढ़ती स्थिति को रोकना मुश्किल होता जा रहा है, कहीं पर दुलहन जला दी जाती है, कहीं पर वह आत्महत्या कर लेती है, कहीं पर यौन उत्पीड़न, बलात्कार हो जाता है, विवाहित महिलाएँ आत्महत्याएँ कर लेती है आदि घटनाएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं और यह घटनाएँ कहीं न कहीं हर रोज़ हो रही हैं। इस

पूरे व्यवस्था की पुनर्स्थापना की आवश्यकता है और आपराधियों को कठोर दंड देकर ही इसकी प्रभावी तरीक़े से हल निकाला जा सकता है। माननीय उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के द्वारा दिए गए दिशा-निर्देशों का पालन भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए जिससे कि धारा 498-क के दुरुपयोग की संभावनाएँ कम हो सकें।

महिलाओं के प्रति बढ़ती क्रूरता एवं उत्पीड़न की घटनाओं पर न्यायालीय दृष्टिकोण से यह पता चलता है कि समाज के कमज़ोर वर्ग से आने वाली महिलाओं के प्रति न्यायालय जागरुक है और उनके मान-सम्मान अधिकारों की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए निर्णय दे रही है। परंतु क्रूरता से संबंधित इस क़ानून का दुरुपयोग भी किया जा रहा है। न्यायालय ने इसे स्वीकार किया है। अतः माननीय उच्चतम न्यायालय के द्वारा जारी दिशा-निर्देश के परिप्रेक्ष्य में धारा 498-क के मामलों का अन्वेषण, जाँच, विचारण किया जाना चाहिए।

महिलाओं के प्रति बढ़ती क्रूरता जैसी घटनाओं की आपसी समझदारी, मेल-मिलाप, एक-दूसरे पक्षकार को मान सम्मान देकर कम किया जा सकता है। इसके लिए समाज में जागरुकता लाकर एवं बुद्धिजीवियों, अधिवक्ता वर्ग को, पारिवारिक सलाहकारों, रिश्तेदारों माता-पिता, शिक्षकों, अभिभावकों को इस दिशा में सकारात्मक पहल करके महिलाओं के प्रति बढ़ते क्रूरता की घटनाओं को रोकने का प्रयास करना चाहिए।

❑

**संदर्भ**


1. प्रो. एस.एन. मिश्र, भारतीय दंड संहिता, 23वीं संस्करण, सेंट्रल लॉ एंजेंसी, इलाहाबाद, (2012)
2. डॉ. फरहत खान, महिलाएँ एवं आपराधिक विधि, संस्करण, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशंस, इलाहाबाद (2016)
3. रतनलाल तथा धीरजलाल, भारतीय दंड संहिता, 34वीं संस्करण, लेक्सीसनेक्सीस, (2012)
4. समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ एवं न्यायालयीन निर्णय।


**फुटनोट**

1. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498-क
2. पवन कुमार बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा, ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 958
3. मोहम्मद हुसैन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2002 क्रि.लॉ.ज. 1
4. 24 (एस.सी.) 4, वमगराला येदुकोंडाला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 1998 क्रि.लॉ.ज. 1538 (आंध्र प्रदेश)


**डॉ. जनार्दन कुमार तिवारी :** सहायक प्राध्यापक, विधि संस्थान, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर





डॉ. निशा केवलिया शर्मा


# हिंदू विवाह अधिनियम 1955 एवं न्यायिक पृथकरण : एक अध्ययन

समाज में अनुशासन की आदर्श एवं सर्वमान्य व्यवस्था हिंदुओं के अतिरिक्त और किसी धर्म या समुदाय द्वारा सम्भव नहीं थी। सामाजिक अनुशासन और पैतृकता का निर्धारण धार्मिक माध्यम से विवाह नामक संस्था की स्थापना से संभव हुआ।

हिंदुओं ने विवाह को एक संस्कार के रूप में स्वीकार किया और यह महिला एवं पुरुष के बीच न टूटने वाले जन्मजन्मांतर के बंधन के रूप में सर्वग्राह्य कर लिया गया। विवाह संस्था समाज का एक आदर्श स्वरूप निर्मित करती है यह पत्नी को पति की अर्धांगिनी संबोधन देती है तो शिव को अर्धनारीश्वर स्वरूप। इस प्रकार विवाह संस्कार पति-पत्नी के सामाजिक स्थान को बराबरी का स्तर भी प्रदान करती हैं।

सभ्य समाज की इतनी आदर्श शुरुआत का श्रेय हिंदू मत को ही जाता हैं। किंतु कालांतर में सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन के साथ-साथ विकृति ने भी स्थान बनाया और तार्किकता को छोड़कर कट्टरता समाज में व्याप्त होने लगी जिसके कई सारे दुष्परिणाम समाज में दृष्टिगोचर होने लगे।

पितृसत्तात्मक समाज ने जड़े गहरी की और महिला को वस्तु की तरह अपने अधीन करने की प्रवृत्ति का सामाजिककरण हो गया। परिणामस्वरूप विवाह संस्था विकृत हो गई।

**2. हिंदू विवाह अधिनियम 1955 की आवश्यता :**

हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के पारित किए जाने की आवश्यकता हिंदू परंपराओं की कट्टरता के कारण पड़ी। हिंदुओं में विवाह संस्कार है और जन्म-जन्मांतर का बंधन हैं। अतः आप विवाह के संबंध को तोड़ नहीं सकते और पुरुष प्रधान समाज होने के कारण पत्नी अधिकार का विषय रही है। प्रभुत्व स्थापित करने की मानसिकता पत्नी पर दबाव और क्रूरता की प्रवृत्ति को जन्म दे रही थी। विवाह के संबंध में समस्त अधिकार

पति को प्राप्त थे। जैसे -- पत्नी पर पूर्ण अधिकार।

**1. शतपथ ब्राह्मण :** परित्याग, चरित्र पर अविश्वास, सन्यास, ज़िम्मेदारियों का पूर्ण निर्वाह नहीं करना और व्यावहारिक समस्याओं की अनदेखी ने विवाह जैसी पवित्र संस्था में समस्याओं को जन्म दिया।

अंततः हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के द्वारा वैवाहिक अनुतोषों को स्थान दिया गया। इन अनुतोषों के अंतर्गत विवाह विच्छेद, वैवाहिक संबंधों की पुनः स्थापना, न्यायिक पृथक्करण विवाह की अकृतता, भरण-पोषण आदि को स्थान दिया गया।

हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के पहले हिंदू विधि में वैवाहिक अनुतोषो को स्थान प्राप्त नहीं था सिवाय रूढ़ियों के। विवाह-विच्छेद को मान्यता देने का प्रथम प्रयास बड़ौदा रियासत में 1930 में हुआ था। 1946 में बम्बई प्रांत में द्विविवाह की प्रथा को समाप्त कर विवाह-विच्छेद को मान्य किया गया। 1949 में में मद्रास प्रांत में 1952 में सौराष्ट्र में इसी तरह के सुधार हिंदू विधि में प्रांतीय स्तर पर किए गए। सामान्य विधि के अंतर्गत किसी विवाह के संबंध में शून्यकरणीयता की घोषणा की डिक्री दायर करके प्राप्त की जा सकती हैं।

हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के द्वारा हिंदू विधि के रूढ़िगत दोषों को दूर किया गया हैं।

**3. वैवाहिक अनुतोष के रूप में न्यायिक पृथक्करण :** हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के अंतर्गत धारा 10 में न्यायिक प्रथक्करण का प्रावधान किया गया हैं। धारा-10 कहती है।

विवाह का कोई पक्षकार चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, धारा-13 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर और पत्नी की दशा में उक्त धारा की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर भी, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिये अर्ज़ी पेश की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिये प्रार्थना करते हुए अर्ज़ी पेश कर सकेगा।

जहाँ कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई हो, वहाँ अर्ज़ीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करें, किंतु दोनों पक्षकारों में से किसी के भी अर्ज़ी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्ज़ी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय, यदि वह ऐसा करना न्यायसंगत और युतियुक्त समझे तो डिक्री को विखंडित कर सकेगा।

अर्थात् न्यायिक पृथक्करण का अनुतोष विवाह के पक्षकारों को प्राप्त है चाहे विवाह इस अधिनियम के पहले या बाद में हुआ हो। न्यायिक पृथक्करण हेतु आधार वही है जो अधिनियम की धारा-13 में विवाह विच्छेद हेतु दिए गये हैं। विवाह-विच्छेद के आधार निम्नलिखित है --

जारता (Adultary) -- जहाँ पर पक्षकार ने विवाह के बाद स्वेच्छा से किसी दूसरे व्यक्ति के साथ लैंगिक सम्भोग किया हैं।

क्रूरता (Cruelty) -- जब याचीकाकर्ता के साथ दूसरे पक्षकार ने मानसिक, शारीरिक या शाब्दिक क्रुरता का व्यवहार किया हो।

अभित्याग (Desertion) -- जब याचिकाकर्त्ता या दूसरे पक्ष ने लगातार अभित्याग किया हो, यह समय याचिका के प्रस्तुत करने की दिनांक से दो वर्ष पूर्व तक माना जायेगा।

कोढ़ (Leprosy) -- जब दूसरा पक्ष याचिका दायर करने के समय से एक वर्ष पूर्व से गंभीर कोढ़ से पीड़ित रहा हो।

रतिजन्य रोग (Venereal disease) -- जब दूसरे पक्ष को याचिका दायर करने के पूर्व से ऐसे रतिजन्य रोग से पीड़ित हो जो संक्रामक हो तो न्यायिक पृथक्करण एवं विवाह-विच्छेद का आधार हैं।

मानसिक विक्रति -- जब प्रत्यार्थी ऐसी मानसिक विकृति से पीड़ित है जो उपचार योग्य नहीं है अथवा अंतराल से ऐसी विकृति के प्रभाव में रहता है जिसकी वजह से याचिकाकर्त्ता युतियुता रूप से पीड़ित पक्षकार के साथ नहीं रह सकता हैं।

धर्म परिवर्तन -- यदि दूसरे पक्षकार ने धर्म परिवर्तन कर लिया है और हिंदू नहीं रह गया हैं।

संन्यास -- यदि दूसरे पक्षकार ने वैवाहिक ज़िम्मेदारी का त्याग कर संसार का भी परित्याग कर प्रवज्या ग्रहण कर ली है। याचिकाकर्ता को विवाह-विच्छेद एवं न्यायिक पृथक्करण का आधार प्राप्त हो जाता हैं।

प्रकल्पित मृत्यु -- यदि विवाह के दूसरे पक्षकार के बारे में लगातार 7 वर्षों से या इससे अधिक समय से जीवित होने के बारे में नहीं सुना गया है लोगों द्वारा भी जीवित होना नहीं सुना गया है और ऐसा पक्षकार लगातार लापता है तो यह उपधारणा कर ली जाएगी की उस की मृत्यु हो गई है। याचिकाकर्त्ता को विवाह विच्छेद एवं न्यायिक पृथक्करण का आधार प्राप्त हो जाता हैं।

**धारा 13(2) - पत्नी को प्राप्त आधार :** पति द्वारा बहुविवाह पत्नी न्यायिक प्रथक्करण एवं विवाह-विच्छेद हेतु याचिका इस आधार पर प्रस्तुत कर सकती है कि पति अधिनियम के लागू होने पूर्व पुनः विवाह कर लिया था या विवाह के समय पति द्वारा विवाहित कोई पत्नी जीवित थी।

पति द्वारा बलात्कार, अप्राकृतिक मैथुन अथवा पशुगमन किया गया हो और इन में से किसी अपराध का दोषी हो तो पत्नी द्वारा न्यायिक पृथक्करण या विवाह-विच्छेद की याचिका दायर की जा सकेगी।

**भरण-पोषण की डिक्री :** यदि पति के विरुद्ध हिंदू दत्तक ग्रहण एंव भरण-पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 18 के अंतर्गत अथवा दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 के अंतर्गत पत्नी के पक्ष में आज्ञप्ति पारित की दी गई है और इसके बाद विवाह

के पक्षकारों के बीच एक वर्ष या एक वर्ष से अधिक समय से पारस्परिक सहमति से वैवाहिक पृथक्करण का समापन उस समय हो जाता है जब पृथक्करण का क़रार विघटित कर दिया जाए और वैवाहिक जीवन पुनः आरम्भ कर दिया जावे। न्यायिक पृथक्करण के समापन के लिए पक्षकारों को न्यायालय में आवेदन देना होगा और पृथक्करण की डिक्री रद्द करने की आज्ञा प्राप्त करनी आवश्यक होगी।[1] न्यायालय का प्रयास होता है वैवाहिक विघटन और पारिवारिक विघटन को रोकना। अतः पक्षकारों के आवेदन पर पृथक्करण की डिक्री को न्यायालयों द्वारा तुरन्त ही रद्द कर दिया जाता हैं।

सामान्यतः न्यायिक प्रथक्करण हेतु कोई युक्तियुक्त आधार होना अनिवार्य हैं। हिंदू विशेष विवाह अधिनियम 1954 की धारा 18 में विवाह विच्छेद और न्यायिक पृथक्करण के आधार कभी-कभी एक ही होते हैं। हिंदू विवाह अधिनियम के 1976 के संशोधन के पश्चात् न्यायिक पृथक्करण और विवाह विच्छेद के आधार एक ही हैं। रोहिणी बनाम नरैन्द्र2 के बाद में न्यायालय ने कहा है कभी-कभी ये आधार अलग-अलग भी होते हैं।

**4. न्यायिक प्रथक्करण एवं विवाह विच्छेद में अंतर :** न्यायिक पृथक्करण एवं विवाह-विच्छेद में मूल अंतर विवाह के अस्तित्व को लेकर है। विवाह-विच्छेद में विवाह का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। पक्षकारों के विवाह संबंधी समस्त अधिकार एवं कर्त्तव्य समाप्त हो जाते हैं। पति-पत्नी का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और दोनों पक्षकार अपना जीवन पृथक् रहकर अपने तरह से व्यतीत करने और दूसरे विवाह हेतु स्वतंत्र हो जाते हैं। सरल शब्दों में पुनः विवाह के पूर्व की अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं।

न्यायिक पृथक्करण में विवाह का अस्तित्व बना रहता है और पक्षकारों के मध्य अधिकार कर्त्तव्य एवं दायित्वों का निलंबन मात्र होता हैं। विवाह के पक्षकार मात्र पृथक्-पृथक् निवास करते हैं किंतु पति-पत्नी का अस्तित्व निरंतर रहता है और विवाह से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती। पुनः विवाह का अधिकार भी इसलिए प्राप्त नहीं होता। यदि विवाह विच्छेद हेतु आधार --

1. हिंदू विवाह अधिनियम 1955 धारा 10 (2)
2. 1972, सु.को. 459

उपलब्ध न हो सके तो न्यायालय स्वविवेक से न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित कर सकता है।[2] लेकिन न्यायिक पृथक्करण के लिए प्रस्तुत याचिका पर विवाह-विच्छेद कि डिक्री नहीं पारित की जा सकती क्योंकि न्यायालयों पर यह नैतिक और सामाजिक दायित्व है कि वे पारिवारिक विघटन को रोकने का पूर्ण प्रयास करेंगे और इसलिए विवाह विच्छेद की डिक्री जारी करने के पूर्व विवाह को बचाने हेतु जो भी व्यावहारिक प्रयास होंगे उन्हें पूर्ण रूप से करेंगे।

न्यायिक पृथक्करण की अवधि में अगर विवाह के पक्षकार पुनः साथ में रहने लगते



हैं तो भी पृथक्करण निष्प्रभावी हो जाता है। लेकिन विवाह-विच्छेद में ऐसा नहीं होता।

**5. न्यायिक पृथक्करण के परिणाम :** न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित होने पर निम्न परिणाम सामने आते है -

विवाह के पक्षकारों के मध्य वैवाहिक संबंधों का अस्तित्व बना रहता हैं। संबंध विच्छेद नहीं होते हैं।

साथ-साथ रहकर सहवास का दायित्व समाप्त हो जाता है।

साथ-साथ निवास करने के दायित्व से मुक्त हो जाते हैं।

अलग निवास करते हुए पत्नी को पति से निर्वाह व्यय प्राप्त करने का अधिकार हो जाता हैं और पति को भी असक्षमता की स्थिति में अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत पत्नी से भरण-पोषण प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हैं।

डिक्री जारी होने की दिनांक से पत्नी को स्वयं की संपत्ति के संबंध में स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है।

**6. न्यायिक पृथक्करण के अनुतोष के प्रावधान का उद्देश्य :** इस अनुतोष को हिंदू विवाह अधिनियम 1955 में स्थान देने का मुख्य उद्देश्य वैवाहिक संस्था के अस्तित्व को बनाये रखना था। विवाह-विच्छेद को रोकने के लिए इस अनुतोष के माध्यम से समझौते का पर्याप्त अवसर विवाह के पक्षकारों को प्राप्त हो सकता है। जिसके द्वारा कई बार पक्षकारों को क्षणिक आवेश या परिस्थितियों का सही तरह से आकलन किए बिना लिए गए निर्णय को सही करने का अवसर प्राप्त होता हैं। (भगवान बनाम अमर कौर, 1962, पंजाब, 144)

**7. न्यायिक दृष्टिकोण :** माननीय न्यायालयों द्वारा न्यायिक पृथक्करण का अनुतोष पक्षकारों के आवेदन पर और स्वविवेक से भी कई वादो में प्रदान किया गया है। उदाहरण स्वरूप कुछ मामलों का अवलोकन कर सकते हैं।

एस. नरसिंह भंडारी बनाम विजया बाई[1] के मामले में उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संविधि किसी विशिष्ट पृथक्करण की डिक्री विखंडित की जा सकती है। किंतु धारा 10(2) न्यायालय को न्यायिक पृथक्करण की डिक्री रद्द करने के लिए सशक्त करती है, यदि वह वैसा करने के लिए ठीक और उचित समझती है। एक पक्ष दूसरे पक्ष की अनुपस्थिति में न्यायिक पृथक्करण की डिकी का विखण्डन करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा। अधिनियम की धारा 10(2) के अंतर्गत न्यायलय को प्रदत्त शक्ति का उपयोग सावधानी से किया जाना चाहिए।

वी. रेड्डी बनाम कस्तम्मा[2] के मामले प्रमाण के मानक का निर्धारण करते हुए कहॉ गया है कि न्यायालय को अनुतोष प्रदान करने के पूर्व सावधानीपूर्वक सभी युक्तियुक्त संदेह से परे संतुष्ट हो जाना चाहिए। कठोर जाँच की अपेक्षा का यह अर्थ नहीं है, कि प्रमाण को निश्चितता तक पहुँचाना चाहिए।

लक्ष्मण बनाम मीना[3] इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पत्नी समस्त काल अवधि तक परित्याग कि अवस्था में रही जिसके परिणामस्वरूप न्यायिक पृथक्करण कि डिकी प्रदान की गई।

अध्यतम्मा भट्ट अलवर बनाम श्री देवी के मामले में पत्नी द्वारा पति की अत्यधिक अयुक्तियुक्त उपेक्षा के आधार पर पति को अधिनियम कि धारा 10 के अंतर्गत न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्राप्त करने का अधिकारी माना।

श्रीमती अलोका डे बनाम मृणाल कांति डे का मामला क्रूरता के आधार पर न्यायिक पृथक्करण का मामला है इस मामले मे पत्नी कि क्रूरता के आधार पर न्यायिक पृथक्करण कि याचिका प्रस्तुत की। इस मामले में पति नें कई बार पत्नी को समझाने का प्रयास किया पंरतु कोई फ़ायदा नहीं हुआ पति को पत्नी के कुछ पत्र प्राप्त हुए जो उसने अपने एक प्रेमी को लिखे थे पति ने जब पत्नी से इस बारे बात की तो उसने अपनी ग़लती स्वीकार कर ली और क्षमा माँग -- 1. 1978 कर्नाटक, 115, 2. Air, 1969 मद्रास, 255, 3. Air,1964 S.c.c 40

किंतु कुछ समय बाद उसका व्यवहार पुनः पहले जैसा ही हो गया। न्यायालय के समक्ष यह साक्ष्य प्रस्तुत किए गए कि पत्नी के इस व्यवहार के लिए पति भी ज़िम्मेदार है और ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह पता चले कि वह जानबूझकर पति को परेशान करती हो, न्यायालय ने इन परिस्थितियों में यह निर्धारित किया कि यह क्रूरता ऐसी नहीं है, जिससे न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान की जावें। इसी प्रकार से जारता एवं क्रूरता के आधार पर न्यायालय द्वारा युक्तियुक्तता के आधार पर न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान की गई है। न्यायालयों द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम की धारा10 का उपयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक किया जाता है।

एम. करुणा कुमारी बनाम ए. जनार्दन राव : इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि जहाँ किसी मामले में न्यायालय ने धारा-9 के अंतर्गत डिक्री पारित कर दी हो और उसके अनुसार दांपत्य पुनर्स्थापन नहीं हुआ हो उस स्थिति में न्यायालय न्यायिक पृथक्करण की आज्ञप्ति पारित करेगा।

**8. वैवाहिक अनुतोष को प्रभावी बनाने हेतु सुझाव :** हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के पूर्व हिंदू विधि में सही अर्थों में वैवाहिक अनुतोष जैसा कोई शब्द नहीं था। विवाह संस्कार था; संविदा नहीं। वर्तमान में वैवाहिक अनुतोष के द्वारा हिंदू विवाह में संस्कार के साथ-साथ संविदा के गुण भी दिखाई देने लगे है। इन अनुतोष का प्रभावी उपयोग हो सके और हिंदुओं के विवाह संस्कार का औचित्य बनाए रखने हेतु कुछ सुझाव --

- विधि का अर्थान्वयन सही तरह से हो और विधि की ग़लती का कोई अनुचित लाभ पक्षकारों द्वारा नहीं उठाया जा सके।



- विवाह विच्छेद की याचिका प्रस्तुत होने पर न्यायालयों द्वारा सम्पूर्ण तथ्यों की समुचित जाँच के पश्चात् न्यायिक पृथक्करण को प्राथमिकता देनी चाहिए और पक्षकारों को समझौते का समुचित अवसर दिया जाना चाहिए।
- न्यायिक पृथक्करण के दौरान पति पत्नी की समय-समय पर काऊँसलिंग की जानी चाहिए और विवाह संस्था के औचित्य और महत्त्व को बताना चाहिए।
- सभी वैवाहिक अनुतोष का न्यायालय द्वारा अत्यंत सावधानीपूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए।
- अनुतोष कार्यवाहियों को अगर पक्षकार रोकना चाहे तो अधिनियम में इसका प्रावधान किया जाए।

1. Air, 2002 s.c.k, 89. 2. Air, 1973 कक्ष 393

1. चंद्रमोहिनी श्रीवास्तव बनाम ए.पी. श्री वास्तव।प्त् 1967 S.C.k, 581

2. श्रीमती सुरेखा बैरागी बनाम प्रो. कमलकांत बैरागी।प्त् 1980 कल370

3. AIR, 2003 S.C.W. 290

**निष्कर्ष :** हिंदू विवाह अधिनियम 1955 सामाज में व्याप्त कई सारी रूढ़ियों को समाप्त करता है और विवाह के पक्षकारों को समानता के साथ अपने दायित्व निर्वाह करने के लिए बाध्य करता है। शिशु कल्याण को महत्त्व देता है तथा उनकी भरण-पोषण संबंधी व्यवस्था करता है। अवांछित संबंधों से मुक्ति का रास्ता भी देता है। हालॉकि इससे विवाह के संस्कार वाले स्वरूप को क्षति पहुँची हैं लेकिन अगर स्त्री-पुरुष समाज के दो सशक्त स्तम्भ है तो उन्हें बराबरी का स्तर समाज में प्राप्त होना ही चाहिए और सामाजिक और नैतिक अनुशासन दोनों की ही समान ज़िम्मेदारी हैं जिसे वैवाहिक अनुतोष के द्वारा विधिक रूप से अनिवार्य कर दिया गया है और न्यायिक पृथक्करण के अनुतोष द्वारा विवाह को बनाए रखने का उपबंध सामाजिक मान्यता और पारिवारिक मूल्यों को बनाए रखने का एक सार्थक प्रयास है।

❑

**संदर्भ**

1. हिंदू विधि रूपारस दीवान
2. हिंदू विधि रूयु पी.डी. केसरी
3. हिंदू विवाह अधिनियम 1955 : खेतपाल पब्लिकेशन
4. हिंदू विधि के सिद्धांत
5. मनु संहिता

सोनल साहू

# विवाह क़ानून में क्रूरता का अर्थ

मानव एक सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज में रहना पसंद करता है। यह एक प्राकृतिक मानवीय स्वभाव है। मानव समाज में परिवार वृद्धि के लिए कई रीति-रिवाज़ हैं, जैसे -- प्रेम, विवाह, सहवास, प्रजनन क्रिया, विवाह विच्छेद, जन्म और मरण इत्यादि। इन सब को नियंत्रित करने के लिए कई संवैधानिक व वैधानिक क़ानून भी बनाए गए हैं जिसमें निर्विवाद रूप से संविधान सबसे उपर विराजमान है। महिला व पुरुष के प्राकृतिक संभोग से ही परिवार का विकास संभव होता है और इस संभोग के लिए एक वैध रीति है विवाह। भारत पुरुष प्रधान बीमारी वाली मानसिकता से ग्रस्त समाज है जिसमें आज तक महिलाओं को केवल अपनी संपत्ति के अलावा कुछ नहीं समझा जाता है। महिलाओं को पुरुष ने सदैव ही एक उपयोग करने वाली वस्तु ही समझा, जब चाहो उपयोग करो और उपयोगी न रहने पर कचरे की भाँति फेंक दो। सदियों से महिलाओं को पुरुषों की यातना व क्रूरताओं का शिकार होना पड़ा है और यह सिलसिला आजतक शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक, राजनैतिक या शैक्षिक रूप में हर कहीं विद्यमान है। महिलाएँ पुरुष की बराबरी करें यह पुरुष को सदैव ही प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से नागवार गुज़रता है।

**प्रमुख शब्द :** भारतीय समाज, भारतीय संविधान, विवाह, क्रूरता, महिला, पुरुष।

**परिचय :** भारत में मानव समाज को कई जाति, वर्ग व संप्रदाय में विभाजित किया गया है जिसमें ऊँच-नीच, जातिवाद, धार्मिक उन्माद और छुआछूत जैसी कुप्रथाओं का प्रचलन आज भी विद्यमान है। यहाँ पर अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति, हिंदु, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, बौद्ध, एलजीबीटी आदि कई संप्रदाय व समाज का मिश्रण हैं। इसलिए विभिन्न समाज व संप्रदाय के लिए इनके अपने निजी विधि व सभी के लिए मानव अधिकार के रूप में एक समान विधि का निर्माण भी समयानुसार किया जाता रहा है। परिवार से



ही समाज की रचना संभव है, इसीलिए परिवार की वृद्धि, विकास, स्वतंत्रता और समुचित सुरक्षा के उपाय के लिए लगभग सभी आधुनिक सम्य समाज में कई प्रकार के संवैधिानिक व वैधानिक क़ानूनों का निर्माण किया गया तथा मानव अधिकार से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों को भी अपनाया गया है जिससे कि मानव समाज का संतुलित व सुरक्षित विकास निरंतर बिना किसी भेद-भाव के निर्बाध रूप से हो। इसके लिए सभी धर्म व संप्रदायों के विवाह व अन्य रीति-रिवाज़ के लिए अपने निजी वैधानिक क़ानून भी हैं जैसे कि- भारतीय ईसाई विवाह विधि, हिंदू विवाह विधि, मुस्लिम विवाह विधि, विशेष विवाह विधि, आनंद विवाह विधि, पारसी विवाह एवं मूलनिवासी जनजातियों की अपनी अलग विवाह रीति-रिवाज़ हैं।

**क्रूरता क्या है?**

ऐसा आचरण जो शारीरिक या मानसिक चोट का कारण बनता है, या बिना किसी वैध उद्देश्य के किसी व्यक्ति या अन्य प्राणी को ऐसी चोट की आशंका उत्पन्न होती है।

क्रूरता क़ानूनी तौर पर मुख्यतः तीन क्षेत्र में प्रकट होती है --

1. अंतर्राष्ट्रीय या मानव अधिकार विधि में क्रूर दंड के निषेध रूप में।
2. जानवर/पशु विधि में जानवरों के लिए आपराधिक अपराध रूप में क्रूरता।
3. विवाह विच्छेद विधि में यह कई न्यायालयों में तलाक़ का आधार के रूप में क्रूरता।

**विवाह क़ानून में क्रूरता का अर्थ :** दुनियाभर के सभी सामाजिक विधियों में विवाह में क्रूरता को विवाह विच्छेद/तलाक़ का एक मुख्य आधार बनाया गया है।

एक ऐसा कृत्य और आचरण जो विवाहित दोनों पक्षकार में से किसी एक पक्षकार के मन की शांति और ख़ुशी को नष्ट करते हैं, यह आचरण परिवार के घर को इतनी गंभीरता से प्रभावित करता है कि वैवाहिक संबंध में रहना असहनीय हो जाता है।

**घरेलू हिंसा से महिला का संरक्षण अधिनियम, 2005 के अनुसार :** क्रूरता से आशय शारीरिक दुव्यवहार या शारीरिक पीड़ा, जीवन या अंग या स्वास्थ्य को ख़तरा या लैंगिक शोषण या महिला की गरिमा का उल्लंघन, अपमान या तिरस्कार करना या अतिक्रमण करना या मौख़िक और भावनात्मक दुर्व्यवहार या उपहास, गाली देना या आर्थिक दुर्व्यवहार अथवा वित्तीय संसाधनों, जिसकी वह हक़दार है से वंचित करना, मानसिक रूप से परेशान करना ये क्रूरता कहलाता है।

**हिंदु कोड बिल :** भारत में महिलाओं की बदत्तर स्थिति के लिए भारत की पौराणिक पोथी-पंथी जो समाज को पुरुष प्रधान बताती है और महिलाओं को पुरुषों की पैरों की जूती, पूर्णरूप से ज़िम्मेदार है। किंतु संविधान निर्मात्री प्रारूप सभा के अध्यक्ष एवं स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि मंत्री श्रीमान बाबा साहब डॉ. भीम राव अंबडेकर ने 11 अप्रैल, 1947

को पेश किया जिसमे पहली बार भारतीय महिलाओं को पुरुष के बराबर अधिकार देने का प्रावधान किया गया था किंतु भारतीय पुरुषवादी कुंठित दक़ियानूसी समाज ने इस बिल को आज तक इसे विधि का रूप नहीं दिया।

**भारतीय दंड संहिता,1860 :** सदियों से महिलाओं के साथ कई प्रकार से यातना देकर उनके साथ क्रूरता का आचरण अपनाया गया इसमें बलात्संग, समूह बलात्संग, अप्राकृतिक संभोग जैसे गंभीर अपराध और शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक, राजनैतिक या शैक्षिक रूप में क्रूर यातना आज भी विद्यमान है, जिसे भारतीय दंड संहिता में समय-समय पर संशोधन करके उपबंधित किया गया जैसे कि धारा 354 महिला की लज्जा भंग करने या लैंगिक उत्पीड़न के लिए उस पर हमला करना, धारा 360 अपहरण, धारा 366 ज़बरन विवाह के लिए महिलाओं का शोषण, धारा 372-373 अवयस्क को वेश्यावृति के लिए बेचना-ख़रीदना, 375-376घख तक महिलाओं के साथ गंभीर यौन अपराध आदि का उपबंध किया गया है जो कि पर्याप्त नहीं है, विवाह विधि से संबंधित प्रमुख उपबंध निम्न है-

1. धारा 304ख -- जहाँ किसी महिला की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी माँग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहाँ ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जाएगा और इसकी सज़ा सात वर्ष से कम नहीं होगी जो कि आजीवन कारावास तक हो सकेगी दंडित किया जाएगा। यहाँ दहेज का वही अर्थ है जो दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 में है।

- दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 के अनुसार दहेज से आशय किसी भी संपत्ति या मूल्यवान् प्रतिभूति होता है चाहे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसके लिए सहमत हो-

क. एक पक्ष से दूसरे पक्ष को विवाह के लिए या

ख. किसी भी पक्षकार के माता-पिता द्वारा विवाह मे लिए या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा या तो विवाह में ख़ुशी मनाने के लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए दोनों पक्षकार के विवाह के संबंध में विवाह के बाद या उससे पहले या किसी भी समय किंतु इसमें मुस्लिम निजी शरीयत विधि द्वारा मेहर शामिल नहीं है। यहाँ मूल्यवान् प्रतिभूति का वही अर्थ है जो दंड संहिता की धारा 30 में है।



- दंड संहिता, 1860 की धारा 30 -- मूल्यवान् प्रतिभूति शब्द उस दस्तावेज़ का द्योतक है जो ऐसी दस्तावेज़ है या होनी तात्पर्यित है जिसके द्वारा कोई विधिक अधिकार सृजित, विस्तृत, अंतरित, निर्बंधित, निर्वापित किया जाए या छोड़ा जाए या जिसके द्वारा कोई व्यक्ति यह अभिस्वीकार करता है कि वह विधिक दायित्व के अधीन है, या अमुक विधिक अधिकार नहीं रखता है।

2. धारा 498 -- कोई व्यक्ति जो किसी महिला को जो किसी अन्य पुरुष की पत्नी है और यह तथ्य वह जानता है, या विश्वास करने का कारण रखता है, तो उस महिला के पति या उसके पति की ओर से उस महिला की देखरेख करता है, के पास से उस महिला के साथ अयुक्त लैंगिक संभोग करने के आशय से फुसला कर ले जाएगा या छिपायेगा या विरुद्ध करेगा तो ऐसा करने वाला पुरुष दो वर्ष तक की कारावास व जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

3. धारा 498क -- विवाहित महिला का पति या पति का कोई नातेदार होते हुए, ऐसी विवाहित महिला के प्रति क्रूरता करेगा, वह तीन वर्ष तक की कारावास या जुर्माना या दोनो से दंडित किया जाएगा।

**स्पष्टीकरण :** क- क्रूरता का आशय जान-बूझकर किया गया कोई आचरण जो ऐसी प्रकृति का है जिससे उस महिला को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की या उस महिला के जीवन, अंग या स्वास्थ्य को गंभीर क्षति या ख़तरा क़ारित करने की संभावना है।

**स्पष्टीकरण :** ख- क्रूरता का आशय महिला को इस दृष्टि से तंग करना कि उसको या उसके किसी नातेदार को किसी संपति या मूल्यवान प्रतिभूति की कोई माँग पूरी करने के लिए उत्पीड़ित किया जाए या किसी महिला को इस कारण तंग करना कि उसका कोई नातेदार ऐसी माँग पूरी करने में असफल रहा है।

**दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 198क :** यह नई धारा सन् 1983 में द्वितीय दांडिक विधि संशोधन के द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता में जोड़ी गई जो कि यह उपबंध करती है कि कोई न्यायालय भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क के अधीन दंडनीय अपराध का संज्ञान ऐसे अपराध को गठित करने वाले तथ्यों को पुलिस रिपोर्ट पर/अपराध से व्यथित व्यक्ति द्वारा या उसके पिता, माता, भाई, बहन द्वारा या उसके पिता/माता, के भाई या बहन द्वारा किए गए परिवाद पर या रक्त, विवाह या दत्तक ग्रहण द्वारा उससे संबंधित किसी अन्य व्यक्ति द्वारा न्यायालय की अनुमति से किए गए परिवाद पर ही करेगा अन्यथा नहीं।

**भारतीय विधि आयोग :** भारतीय दंड संहिता, 1860 में धारा 498क का उपबंध

भारतीय विधि आयोग की अनुशंसा पर ही सन् 1983 में द्वितीय दांडिक विधि संशोधन के माध्यम से अध्याय 20क के अधीन धारा 498क का उपबंध किया गया जिससे कि विवाह विधि और विवाहित महिलाओं के साथ की जाने वाली क्रूरतापर्ण आचरण को दंडित कर रोका जा सके।

**भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872**

1. धारा 113क -- भारतीय साक्ष्य विधि में यह उपबंध सन् 1983 में द्वितीय दांडिक संशोधन विधि द्वारा जोड़कर यह उपबंधित किया कि- प्रश्न कि क्या किसी महिला द्वारा आत्महत्या करना उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित किया गया है और यह दर्शित किया गया है कि उसने अपने विवाह की तारीख़ से सात वर्ष की अवधि के भीतर आत्महत्या की थी और यह कि उसके पति या उसके पति के ऐसे नातेदार ने उसके प्रति क्रूरता की थी, तो न्यायालय मामले की सभी अन्य परिस्थितियों को ध्याान में रखते हुए यह उपधारणा कर सकेगा कि ऐसी आत्महत्या उसके पति या उसके पति के ऐसे नातेदार द्वारा दुष्प्रेरित की गई थी। इसमें क्रूरता का वही अर्थ है जो दंड संहिता की धारा 498क में है।
2. धारा 113ख और प्रश्न यह कि किसी व्यक्ति ने किसी महिला की दहेज मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु से कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी माँग के लिए या उसके संबंध में उस महिला के साथ क्रूरता की थी या उसको तंग किया था तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी। यहाँ दहेज मृत्यु का वही अर्थ है जो दंड संहिता की धारा 304ख में है।

**विवाह विच्छेद (तलाक़) अधिनियम, 1869 की धारा 10**

क्रूरता ऐसी होनी चाहिए जिससे कि याचिकाकर्ता पति-पत्नी के दिमाग में ऐसी युक्तियुक्त आशंका हो कि याचिकाकर्ता का प्रत्युतर दाता के साथ रहना हानिकर अर्थात् हानिकारक होगा। अभिव्यक्ति हानिकर अथवा हानिकारक को शारीरिक हानि अथवा क्षति तक सीमित नहीं किया जा सकता है। कोई बात जो पति-पत्नी को पूरी तरह से विकसित होने और विवाह युक्त जीवन के आनंद उठाने में पति-पत्नी की योग्यता को अवरोधित करता है।

**संवैधानिक उपबंध :** 26 नवंबर, 1949 का दिन भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है जब भारतीय संविधान के छत के नीचे समस्त भारत वासियों ने सदियों से चली आ रही दासता व दमनात्मक अत्याचारों की बेड़ियों से मुक्त हो कर स्वतंत्र साँस ली। भारतीय संविधान में महिला व पुरुष के बीच किसी प्रकार से कोई भेद-भाव नहीं किया गया है बल्कि महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान किया गया है जिससे आधुनिक समाज में महिलाएँ अपने आपको किसी भी मामले में पुरुषों की तुलना में कमज़ोर न समझें।

अनुच्छेद 14 -- राज्य, भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता एवं विधियों के समान संरक्षण से वंचिति नहीं करेगा।

अनुच्छेद 15 -- धर्म, मूलवंश, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी नागरिक के विरुद्ध कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

अनुच्छे 15(3) -- अनुच्छेद 15 की कोई बात स्त्रियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने में बाधक नहीं होगा।

अनुच्छेद 21 -- किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 23 -- मानव का व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात्श्रम निषेद्ध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि अनुसार दंडनीय होगा।

अनुच्छेद 39(क) -- पुरुष व महिला सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार।

अनुच्छेद 39(घ) -- पुरुष व महिला दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन।

अनुच्छेद 39(ड) -- पुरुष व महिला कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोज़गारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो।

**भारतीय न्यायिक प्रणाली :** भारतीय संविधान में न्यायपालिका को विधायिका व कार्यपालिका से पृथक् व स्वतंत्र रखा गया है। न्यायिक प्रणाली में उच्चतम न्यायालय सबसे उंचे पायदान पर है उसके बाद उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालय हैं। उच्चतम न्यायालय ने अभी हाल ही में राजेश शर्मा व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (2018) के वाद में दंड संहिता की धारा 489क से संबंधित प्रक्रियाओं के बारे में कुछ दिशा-निर्देश दिए हैं जिसका महिलाओं विशेषकर जो महिला अनाथ या निर्धन हैं या जिसका कोई नातेदार नहीं है उसके लिए यह दिशा-निर्देश प्रतिकूल सिद्ध होगा जो कि महिलाओं के हित व सुरक्षा के प्रतिकूल जा सकता है और पुरुषों द्वारा इसका मन-माफ़िक यातना देने के लिए उपयोग किए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। फिर भी आधुनिक समय में सबरीमाला मंदिर में महिलाओं के प्रवेश पर पाबंदी को भी उच्चतम न्यायालय ने असंवैधानिक मानकर महिलाओं को सबरीमाला मंदिर में प्रवेश का अधिकार दिया।

भारतीय दंड संहिता की धारा 377 जो किसी पुरुष, महिला या जीव-जन्तु के साथ

प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध स्वेच्छया इंद्रिय-भोग करेगा, वह आजीवन या दस वर्ष के कारावास से दंड का उपबंध करती है, को भी सुरेश कौशल वाद में असंवैधानिक क़रार दिया। पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (2017) के वाद में निजता के अधिकार को संविधान के भाग-3 का अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रत्याभूत प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार के अनिवार्य आंतरिक भाग के रूप समाहित करते हुए संरक्षित मूलभूत अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान किया है। खादानों में भी महिलाओं को पुरुष की भाँति कार्य करने का अधिकार प्रदान किया है। इस प्रकार आधुनिक समय में उच्चतम न्यायालय सदियों पुरानी रीति-रिवाज़ जो कि एक मानव को मानवीय जीवन जीने में अतार्किक रूप से सीमित करते हैं उनको संवैधानिक प्रावधानों के अनुकूल परीक्षण कर असंवैधानिक क़रार दिया जा रहा है जो कि सार्वभौमिक मानव अधिकार-घोषणा व मानवीय हित में हैं। न्यायापालिका से महिलावर्ग यही उम्मीद करती है कि महिलाओं को भी आधुनिक समाज में बिना किसी भेद-भाव व पक्षपात के पुरुषों के बराबार सभी क्षेत्रों में समानता का अधिकार मिले, समानता का सम्मान मिले, निर्भय होकर अपना जीवन जीयें, स्वस्थ व सुरक्षित वातावरण मिले जिसमें कि वह अपने आपको सहज महसूस कर सकें।

**निष्कर्ष :** आधुनिक समय में देश में जो हालात है निःसंदेह ही मानव जाति के मन में भय और भविष्य को लेकर गंभीर रूप से चिंतित हैं इसमें महिलावर्ग सबसे अधिक अपनी सुरक्षा और पहचान को लेकर व्यथित है। कुछ काल्पनिक कहावत तो यह भी है कि भारत में महिलाओं की पूजा की जाती है जबकि हक़ीक़त में पूजा के नाम पर महिलाओं का घर, परिवार व समाज में सदैव किसी न किसी रूप में शोषण ही किया जाता रहा है। महिलाएँ अपनी पूजा नहीं करवाना चाहता, जबरन पुरुषवादी उदासीन मानसिकता ने हमारे समाज में महिलाओं को केवल उपयोग की वस्तु बनाकर रख दिया है। सच तो यह है कि आज महिलाओं से उनकी इच्छा, पसंद-नापसंद और उनकी ज़रूरतों के बारें में कोई नहीं पूछता बल्कि जबरन येनकेन प्रकारेण महिलाओं पर अपनी लालसा या इच्छा को थोपते जा रहे हैं।

आज महिलाएँ समाज में बिना किसी भेद-भाव, भय या पक्षपात के पूरी आज़ादी से पुरुषों की भाँति या उनसे भी बेहतर जीवन जीना चाहती हैं, सभी क्षेत्रों में बराबर का अधिकार और समान अवसर चाहती हैं। आधुनिक समय में इसकी नितांत आवश्यकता है कि महिलाओं को घर, परिवार, समाज या किसी भी प्रकार की परिस्थिति में असहज व असुरक्षित वातावरण का एहसास न होने दें बल्कि उन्हें सभी प्रकार के समान अवसर, सुरक्षा व सम्मान प्रदान करें।

❑



**संदर्भ**


1. भारत का संविधान
2. भारतीय दंड संहिता, 1860
3. दांडिक विधिभारतीय (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1983, 1986, 2013 और 2018
4. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872
5. भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973
6. पारिवारिक विधि (हिंदु,मस्लिम, ईसाई, पारसी, जनजाति प्रथाएं)
7. दहेज निषेध अधिनियम, 1961
8. विवाह विच्छेद (तलाक़) अधिनियम, 1869
9. भारतीय विधि आयोग

**Websites-**

1. http://supremecourtofindia.nic.in
2. http://lawcommissionofindia.nic.in
3. https://www.livelaw.in
4. https://indiankanoon.org

**वाद सारणी**

1. अरूणा व्यास व अन्य बनाम अनिता व्यास, एआईआर, (1999) एससी 2071
2. आशा बाई बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 1 एसीसी (क्रि.943)
3. सुरेश कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2014 क्रि.लॉ.ज.551 एससी
4. राजस्थान राज्य बनाम गिरधारी लाल, 2014 क्रि.लॉ.ज. 41 एसीसी
5. भोलाराम बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2014 एसीसी 241
6. नरेश कुमार बनाम हरियाणा राज्य (2015) 1 एसीसी 797
7. राजेश शर्मा व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (2018)


**सोनल साहू :** विधि छात्रा, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

डॉ. रहीसा तरन्नुम

# तीन तलाक़ और मुस्लिम महिलाएँ 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी'

ईश्वर द्वारा मानव की उत्पत्ति एक महान् कार्य है लेकिन इसके संबंध में अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिल पाया है कि दुनिया में सबसे पहले पुरुष का जन्म हुआ है या महिला का? शास्त्रों और प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि विश्व में पहले पुरुष का जन्म हुआ है।

जैसे -- हिंदु धर्म में मनु महाराज, मुस्लिम धर्म में आदम, और ईसाई धर्म में यीशू को माना गया है। जैसे जैसे हम शास्त्रों का अध्ययन करते है वैसे वैसे हमें जानकारी होती है कि जब संसार में पुरुष का जन्म हुआ तो वह अकेला था इसलिए उसकी पूर्ति करने के लिए ईश्वर ने सतरूपा या हव्वा अलैयस्सलाम की उत्पत्ति की है।

इस प्रकार सभी धर्मो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मानव की उत्पत्ति में स्त्री की भागीदारी बराबर है परंतु पुरुष चाहता है कि जैसे वह शास्त्रों ग्रथों में प्रधान है वैसे ही हमेशा प्रधान रहे; वह महिलाओं को कभी भी अपने से आगे नहीं होने देना चाहता, इसलिए वह उसके सम्मुख ऐसी समस्याएँ उत्पन्न कर देता है कि महिलाएँ उनसे लड़ते लड़ते ही मर जाएँ।

आज के वर्तमान युग में भी महिलाओं का संरक्षण विश्व के सम्मुख सबसे बडी चुनौती है। महिलाओं का शोषण, अत्याचार एंव उत्पीडन किया जाता है। पुरुष प्रधान समाज में सामाजिक परंपराओं या रीति रिवाज़ स्त्री पर ही लागू होते है जबकि स्त्री और पुरुष दोनों ही परिवार रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। सामाजिक वर्जनाओं का शिकार प्रायः महिला ही होती है समाज में उसकी तस्वीर अपराधों के जनक के रूप में बना दी गई है।

भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है इसका कोई विशेष धर्म नहीं है और न ही यह किसी



धर्म को विशेष दर्ज़ा प्रदान करता है। यही हमें अनेकता में एकता दिखाई देती है। भारत में किसी भी धर्म को मानने, प्रचार-प्रसार करने में कोई प्रतिबंध नहीं है। सभी नागरिक किसी भी धर्म को मान सकते हैं, उसके अनुसार आचरण कर सकते हैं यह बात तब पूर्ण होती है जब इसका प्रावधान हो और ये प्रावधान हमारे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक में देखने को मिलता है अर्थात् जब तक कोई विशेष उपबंध न हो तब तक हम कोई भी बात ज़ोर देकर नहीं कह सकते हम मात्र कोरी कल्पना ही कर सकते हैं।

इसी प्रकार हमारा संविधान सभी नागरिको को समानता का अधिकार प्रदान करता है अनुच्छेद 14 कहता है सभी व्यक्ति विधि के समक्ष समता अथवा विधियों के समान संरक्षण के अधिकारी है। संविधान का अनुच्छेद 14 नागरिकों को भी प्राप्त है तो फिर पुरुष और महिला को एक समान प्राप्त क्यों नहीं है? क्यों महिलाओं के लिए विशेष उपबंध अनुच्छेद 15 (3) स्त्रियों और बच्चों के लिए विशेष उपबंध में किया गया है। यह सकारात्मक विभेद वर्षो से महिलाओं के साथ हो रहे विभेद को कम करने का प्रयास है। अब हम बात करते है विधियों के समान संरक्षण की तो क्यों हिंदू मुस्लिम सभी की व्यक्तिगत विधि लागू होती है। अनुच्छेद 44 के अनुसार सभी के लिए समान सिविल संहिता नहीं बनाई जा सकती है परंतु मुस्लिम से संबंधित कई वादों (विवाह, तलाक़ या भरण पोषण) में उच्चतम न्यायालय अपनी सक्रियता दिखाते हुये निर्णय विशेषकर मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण में विशेष योगदान दिया जिसके ज्वलंत उदाहरण शाहबानो बेगम, नरगिस मिर्ज़ा के वाद में देखने को मिलता है।

मुस्लिम विधि को पवित्र विधि माना जाता है क्योंकि मुस्लिम विधि कुरान पर आधारित है जिसमें मुसलमान आदिकाल से अल्लाह की सत्ता को मानते है तथा इसे संसार में मानव के समक्ष पेश करने का श्रेय मोहम्मद साहब को है। कुरान में धर्म और आध्यात्म के अतिरिक्त विधिशास्त्र का भी उल्लेख है। कुरान अल्लाह द्वारा पैगंबर साहब को दिया गया एक संवाद है। पैगंबर साहब के पैगंबर बनने के 23 वर्षों के अंदर कुरान का संग्रहण कर लिया गया था। कुरान एक साथ बनकर तैयार नहीं हुआ है जैसे जैसे पैगंबर साहब के सामने समस्याएँ आती थी वैसे वैसे ही जिब्राइल अलैयस्सलाम कुरान की आयतें लेकर आते थे ताकि समस्याओं का निराकरण हो जाएँ। इस तरह से पूरा कुरान 23 वर्षों में बनकर तैयार हुआ। परंतु जब किसी विषय पर कुरान में कोई प्रावधान नहीं है तो सुन्नत अथवा सुन्नाह और हदीस की मदद ली जा सकती है मुसलमानों के अनुसार सुन्नाह और हदीस कुरान के अनुपूरक समझे जाते है।

मोहम्मद साहब के पैगंबर बनने के पहले मुस्लिम विधि का कोई अस्तित्व नहीं था। अरब में निवास करने वाले व्यक्तियों की सामान्य विधि नहीं थी। वहाँ के लोग छोटे छोटे

क़बीलों में बटे हुए थे। प्रत्येक कबीले में एक सरदार होता था, जिसकी नियुक्ति साहस, ज्ञान और कुलीनता के आधार पर की जाती थी, हर कबीले का अपना निजी क़ानून होता था और झगड़े मुखिया या तलवार द्वारा तय किए जाते थे। उस समय स्त्रियों को कोई क़ानूनी अधिकार प्राप्त नहीं थे, उन्हें पशुओं की तरह संपत्ति समझा जाता था, बालिकाओं की हत्या साधारण बात थी, उस समय नियमित विवाह जैसा कोई प्रचलन नहीं था। यौन संबंधों के लिए स्त्री पुरुष के साथ सहवास करती थी। उस समय मुता या निश्चित अवधि के लिए विवाह का प्रचलन आम बात थी। जब इस्लाम धर्म का प्रारभ हुआ तो मुता विवाह को क़ानूनी वेश्यावृति कहा जाता था जिसे पैगंबर साहब ने निषिद्ध घोषित कर दिया।

विवाह के लिए मेहर आवश्यक था लेकिन यह पत्नी को न मिलकर पति, भाई या उसके संरक्षक को दिया जाता था और विवाह की संविदा में पत्नी स्वतंत्र पक्षकार नहीं होती थी। उनके संरक्षक या माता पिता उनका विवाह किसी भी व्यक्ति से कर देते थे। उत्तराधिकार संपत्ति के संबंध में मुसलमान अपनी संपूर्ण संपत्ति वसीयत के माध्यम से अंतरित कर सकते थे। उत्तराधिकार में स्त्री अपवर्जित थी उन्हें संपत्ति में कोई भी हिस्सा नहीं मिलता था। ऐसे समाज को व्यवस्थित करने के लिए एक सुधारक की आवश्यकता थी जिसका जन्म 570 ई. में मक्का में हुआ था। उनका नाम पैगंबर मोहम्मद साहब था। उन्होंने इस्लाम धर्म का प्रचार किया तथा समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया जिससे मुस्लिम धर्म व्यवस्थित होने लगा तथा कुरान के अनुसार नियम क़ानून बनाकर कार्य किए जाने लगे। पैगंबर मोहम्मद साहब ने ही मुस्लिम धर्म को सही गति प्रदान की तथा कहा कि इंसान का प्रथम कर्त्तव्य मानव सेवा तथा परोपकार है जो व्यक्ति इंसान पर दया करेगा, अल्लाह उस पर दया करता है इस प्रकार मुस्लिम धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। लेकिन जैसे ही मोहम्मद पैगंबर साहब की मृत्यु हुई वैसे ही इस्लाम धर्म दो संप्रदायों में बँट गया जो शिया और सुन्नी के नाम से जाना जाता है जिनमें सबकी अपनी अपनी उपशाखाएँ हैं इतने सारे फ़िरक़े होने के बाद भी मुसलमानों में कोई जाति भेद नहीं है।

वर्तमान समय में सभी माता पिता चाहते है। कि उनके घर केवल लड़का ही पैदा हो। कन्या के जन्म की अपेक्षा बालक के जन्म को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यह धारणा सभी धर्मो के लोगों में हैं। कन्या का पैदा होना ही सबसे बडी समस्या समक्षते है लेकिन वे लोग यह क्यों नहीं समझ पाते कि महिला के बगैर विश्व का चलना असंभव है। क्यों नहीं समझ पाते कि आख़िर ईश्वर ने भी एक महिला की उत्पत्ति कर संसार का निर्माण कराया है। जो पुरुष कन्या के जन्म के विपक्ष में है वे ये क्यों नहीं मानते कि उनके दादी, नानी, माता, बहन और जो महिला भी विपक्ष में है वे भी क्यों नहीं समझ पाती कि वे भी स्वयं एक महिला है। वे भ्रूण-लिंग परीक्षण करा कर गर्भपात करा देते है। ग़ैर-सरकारी आँकड़ों के अनुसार हर वर्ष 40 लाख गर्भपात प्रतिवर्ष कराए जाते हैं जिनमें



से 70 प्रतिवर्ष भ्रूण मादा के होते हैं।

**भारतीय जनसंख्या अनुपात के अनुसार :**

**जनगणना वर्ष** 1951, 1961, 1971, 1981, 1991, 2001, 2011 में प्रति 1000 पुरुष पर स्त्रियों की संख्या क्रमशः रही है। 946, 941, 930, 934, 927, 933 943

ये आँकड़े सभी धर्मों की महिलाओं के हैं। अब हम मुस्लिम महिलाओं के आँकडों पर ध्यान दें तो मुस्लिम समाज में महिलाओं को प्राचीन काल से ही पैरों की जूती माना गया है। मुस्लिम समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत दयनीय है।

**तलाक़ :** मुस्लिम समाज में तलाक़ बहुत व्यापक है। यह पति द्वारा पत्नी को एकपक्षीय अकारण सनक पर मज़ाक में या नशे में बिना न्यायालय में जाए पत्नी की अनुपस्थिति में भी दिया जा सकता हैं विवाह के विघटन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि पति तलाक़ क्यों दे रहा है उसके लिए सिर्फ़ तलाक़ शब्द का उच्चारण ही पर्याप्त है।

मुस्लिम समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत दयनीय है। उनके समक्ष शिक्षा, पर्दाप्रथा, विवाह, तलाक़, मेहर, इद्दत, भरण पोषण, उत्तराधिकार की अनेक समस्याएँ विद्यमान हैं। मुस्लिम समाज में पर्दाप्रथा का चलन प्राचीनकाल से चला आ रहा है। हम ये नहीं कहते कि ये ग़लत है। जिस समय ये सारे नियम क़ानून बने थे, उस समय ये सब सही थे, लेकिन जैसे जैसे समाज में बदलाव आता जा रहा है तो इनकी समस्याओं का निराकरण उच्चतम न्यायालय द्वारा कराया जा सकता है। **मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य ए.आई. आर.1992 एस.सी.सी.622** इस वाद में शिक्षा के अधिकार को मूल अधिकार माना गया। संविधान के अनुच्छेद 21अ में शिक्षा का अधिकार दिया गया है लेकिन मुस्लिम महिलाओं को शिक्षा आज भी नहीं मिल पा रही है जबकि उच्चतम न्यायालय चाहे तो कठोरता से इसका पालन करा सकता है। **उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य ए.आई.आर.1993 एस.सी.सी.645** राज्य ऐसी रीति से जैसा विधि बनाकर निर्धारित करें 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के सभी बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए उपबंध करेगा। दूसरी समस्या पर्दा प्रथा की है। मुस्लिम महिलाओं को चाहे उनकी उम्र कितनी भी हो, परदे में रहना पडता है। विवाह को मुस्लिम समाज विधि में एक संविदा माना है लेकिन संविदा तभी वैध होती हैं जब वह स्वतंत्र सहमति से की गई हो, लेकिन मुस्लिम विधि में महिला की सहमति तो होती है परंतु वह स्वतंत्र सहमति नहीं होती।

तलाक़ शब्द सुनकर ही एक मुस्लिम महिला की आत्मा काँप जाती है क्योंकि यह एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग करके कोई भी मुस्लिम पुरुष अपनी पत्नी को हमेंषा के लिए छोड़ सकता है जो मुस्लिम महिला के लिए सबसे दुखदायी होता है। वह हमेशा इसी डर के साथ अपना जीवन जीती रहती है कि पता नहीं किस क्षण उसका पति तलाक़

शब्द का उच्चारण करके उससे रिश्ता ख़त्म कर सकता है।

कुरान में सभी रिश्तों के बारे में बताया गया है लेकिन मियाँ बीबी के रिश्ते के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है क्योंकि यही एक रिश्ता है जो सिर्फ़ एक शब्द तलाक़, तलाक़, तलाक़ बोलने से टूट जाता है। तीन तलाक़ के तहत मुस्लिम पति अपनी बीबी को बोलकर या लिखकर तलाक़ दे सकता है और बीबी का वहाँ उपस्थित होना ज़रूरी भी नहीं होता है यहाँ तक कि आदमी को तलाक़ के लिए कोई वजह भी नहीं बतानी पडती। वर्तमान समय में तो मोबाइल के जरिए तलाक़ दिया जाने लगा है तीन तलाक़ से पुरुषों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता पर उस बीबी पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है जैसे बच्चों की ज़िम्मेदारी, गुज़ारा करने के लिए पैसा कमाना, रहने के लिए घर ये सब समस्याएँ अचानक से उस तलाक़शुदा महिला के सम्मुख खड़ी हो जाती है?

तीन तलाक़ आज एक राजनैतिक मुद्दा बन गया है। वर्ष 2018 में सरकार तीन तलाक़ पर लोकसभा के शीतकालीन सत्र में इस बिल को पारित करने में सफल हुई है। इस विधेयक के अंदर तीन तलाक़ लेना क़ानूनन अपराध होगा। जिसके लिए मुस्लिम पुरुष को 3 साल तक की सज़ा हो सकती है। पुरुष को तलाक़शुदा महिला को गुज़ारे के लिए पैसे भी देने होगें। मुस्लिम महिलाओं के लिए यह एक बहुत ही बड़ी उपलब्धि है समान अधिकार की तरफ़ यह एक बड़ा क़दम है। मुस्लिम लॉ बोर्ड इस बिल के ख़िलाफ़ है उनके हिसाब से यह बिल मुस्लिम धर्म के ख़िलाफ़ है।

पिछले कुछ महीनों में तीन तलाक़ से पीडित महिलाएँ कोर्ट में लड़ रही हैं। वे भारतीय न्याय संस्था से न्याय की माँग कर रही है। भारतीय उच्चतम न्यायालय ने तीन तलाक़ को ग़ैर-संवैधानिक क़रार दिया है। उच्चतम न्यायालय ने सरकार को ज़िम्मेदारी दी है कि जजमेंट के हिसाब से क़ानून बनाया जाए। पुरुष और स्त्री एक समान बनाए गए हैं तो उनके हक़ भी एक समान होने चाहिए। धर्म, प्रथाएँ समय के अनुसार बदलनी चाहिए। महिलाओं के समान हक़ का महत्त्व हमें एवं देश को, नई पीढी को समझना पड़ेगा। हमारे देश की आधी आबादी को हम पीछे रखकर कभी भी प्रगति की ओर नहीं जा सकते। हमें ऐसे तीख़े सवाल को उठाना पड़ेगा और उनको समझना पड़ेगा और यह हर धर्म पर लागू होता है।

अमीर अली के अनुसार, पैगंबर मोहम्मद साहब के सुधार पूर्वदेशीय विधानों के इतिहास में एक नये युग के प्रतीक है। उनमें पहली बात यह है कि उन्होंने पति के तलाक़ देने की शक्ति को सीमित कर दिया है। दूसरी यह कि उन्होंने स्त्रियों को उचित आधार पर अलग हो जाने का अधिकार प्रदान किया है। पैगंबर साहब ने कहा कि यदि कोई स्त्री अपने विवाह से दुःखी है तो उस संबंध का विच्छेद हो जाना चाहिए। यद्यपि पैगंबर साहब ने विवाह विच्छेद को सबसे बुरा समझा, किंतु उसे संभवतः जनविरोध की आशंका से सुधार



के साथ सहन किया।

मुस्लिम विधि के लगभग सभी विद्वान् तलाक़ को उचित मानते हैं, किंतु उसके अकारण प्रयोग को वे नैतिकता और धर्म की दृष्टि से जघन्य समझते हैं। पैगंबर साहब का कथन है कि जो मनमानी रीति से पत्नी को अस्वीकार करता है वह ख़ुदा के शाप का पात्र होता है। अपने अंतिम समय के निकट उन्होंने बिना पंच या न्यायाधीश के हस्तक्षेप को पुरुषों द्वारा तलाक़ के प्रयोग को ही एक प्रकार से लगभग वर्जित-सा कर दिया था। इस संबंध में कुरान में लिखा है कि यदि उनके मध्य वैवाहिक संबंध के भंग होने की आशंका हो तो एक निर्णायक पति के पक्ष से और एक पत्नी के पक्ष से नियुक्त करो। इस प्रकार यदि वे अपने संबंध सुधारना चाहेंगे तो अल्लाह उन्हें एकमत कर देगा। तीन तलाक़ के मुद्दे को लेकर काफ़ी सालों से बहस होती आ रही है, देश भर में ज़्यादातर लोगों का कहना है कि तीन तलाक़ अच्छा नहीं है लेकिन इसके बावजूद अभी तक इस मुद्दे का निपटारा करने के लिए कोई बीच का रास्ता नहीं निकल पाया है।

**कुरान क्या कहता है** कुरान में कहा गया है कि जब पति पत्नि के अलग होने की नौबत आन पड़े तो अल्लाह ने कुरान में उनके क़रीबी रिश्तेदारों या फिर उनका भला चाहने वालों को यह हिदायतें दी है कि वे आगे बढकर मामले का निपटारा कराएँ और उनके रिश्ते में सुधार लाने का काम करें। अगर इससे भी बात नहीं बनती है तो शौहर और बीबी दोनों या दोनों में से जिस भी एक ने तलाक़ देने का फ़ैसला किया है तो ऐसे शौहर को बीबी के मासिक धर्म आने और इसके ख़त्म हो जाने का इंतज़ार करना होता है और इसके ख़त्म हो जाने के बाद शारीरिक संबंध नहीं बनाना होता है। इसके बाद कम-से-कम दो ज़िम्मेदार लोगों को गवाह बनाकर उनके सामने बीबी को एक तलाक़ दे, अर्थात् शौहर बीबी से सिर्फ़ इतना कहें कि मैं तुम्हें तलाक़ देता हूँ। इसके बाद बीबी को तीन महीने तक अगर वो प्रेग्नेंट है तो बच्चा होने तक अपने ससुराल में रहने की इज़ाज़त दी जाती है और इस दौरान उसके शौहर को ही उसका सारा ख़र्च उठाना होता है ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि शौहर और उसकी पत्नी को तलाक़ के फ़ैसले के बारे में सोचने के लिए अधिक वक्त मिलें और वे तलाक़ का अपना फ़ैसला वापस ले लें। अगर पति पत्नी में सुलह हो जाए तो वो फिर से शौहर और बीबी के रूप में रह सकते है लेकिन इसके लिए उन्हें उन गवाहों के सामने ये बात कहनी होती है कि हमने अपना फ़ैसला बदल लिया है जिनके सामने उन्होंने तलाक़ देने की बात कही थी। ऐसा ज़िंदगी में सिर्फ़ दो बार ही किया जा सकता है।

कुछ देशों ने तीन तलाक़ की प्रथा को ख़त्म कर दिया है। तीन तलाक़ ख़त्म करने की ऐतिहासिक घोषणा करने वाला मिस्र सबसे पहला देश है जिसने 1929 में क़ानून के जरिए घोषणा की थी कि तलाक़ को तीन बार कहने पर भी उसे एक ही माना जाएगा

और इसे वापस लिया जा सकता है। मिस्र ने 1929 में इस विचार को क़ानूनी मान्यता दी थी, लेकिन इस क़ानून में एक बात जो ग़ौर करने वाली यह है कि लगातार तीन तूहरा, जब बीबी का मासिक धर्म चक्र न चल रहा हो, के दौरान तलाक़ कहने से तलाक़ अंतिम माना जाएगा। बहुत से मुस्लिम देशों में सीधे या अप्रत्यक्ष तौर पर तलाक़ की प्रथा को ख़त्म किया जा चुका है, इन देशों में पाकिस्तान, बंग्लादेश, ईरान, तुर्की, ट्यूनीशिया, अल्जीरिया और मलेशिया जैसे देश शामिल हैं। इससे एक चीज़ साफ़ हो जाती है कि ये प्रथा अब सिर्फ़ भारत और दुनिया-भर के सिर्फ़ सुन्नी मुसलमानों में बची हुई है।

ऐसा नहीं कि भारत में लंबे समय से चली आ रही तीन तलाक़ की प्रथा ख़त्म करने के लिए कुछ नहीं किया जा रहा है। यह की अदालतों में भी इस प्रथा को ख़त्म करने के लिए फ़ैसले सुनाए हैं। वर्ष 2008 में दिल्ली हाईकोर्ट के जज बदर दुरेज अहमद ने कहा था कि भारत में तीन तलाक़ को वापस लिया जा सकता है। इसी तरह **गुवाहाटी हाईकोर्ट ने जियाउद्दीन बनाम अनवरा बेगम** मामले में कहा था कि तलाक़ के लिए पर्याप्त आधार होने चाहिए और सुलह की कोशिशों के बाद ही तलाक़ होना चाहिए। वर्ष 2016 में इलाहाबाद हाईकोर्ट ने भी तीन तलाक़ पर बड़ा फ़ैसला सुनाया था और इसे मुस्लिम महिलाओं के ख़िलाफ़ क्रूरता बताया था, वही मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ नाराज़गी जताते हुए इसे शरीयत के ख़िलाफ़ बताया था, भारत में बड़ी संख्या में मुस्लिम महिलाएँ तीन तलाक़ को ख़त्म करने के पक्ष में है। तीन तलाक़ के महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर फ़ैसला सुनाते हुए सुप्रीम कोर्ट के पाँच जजों की संवैधानिक पीठ के तीन जजों ने इसे असंवैधानिक बताया है। जस्टिस यू. ललित, जस्टिस फली नरीमन, जस्टिस जोसेफ कुरियन ने तीन तलाक़ को असंवैधानिक बताते हुए कहा इससे मुस्लिम महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन होता है जबकि इससे पहले चीफ जस्टिस जे.एस. खेहर ने कहा कि तीन तलाक़ धार्मिक प्रकिया और भावनाओं से जुड़ा मामला है। इसलिए इसे एकदम से ख़ारिज नहीं किया जा सकता; खेहर ने कहा कि इस मुद्दे पर सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है संसद और केंद्र सरकार। उन्हें ही इस पर क़ानून बनाना चाहिए। सरकार को क़ानून बनाकर इस पर एक स्पष्ट दिशा-निर्देश तय करने चाहिए। चीफ जस्टिस जे.एस. खेहर ने इसके लिए केंद्र सरकार को छः महीने का समय दिया। खेहर ने कहा कि छह महीने तक के लिए कोर्ट अनुच्छेद 142 के तहत विशेष शक्तियों का प्रयोग करते हुए तीन तलाक़ पर तत्काल रोक लगाए। इस अवधि में देश-भर में कहीं भी तीन तलाक़ मान्य नहीं होगा। चीफ जस्टिस के बाद तीन अन्य जजों जस्टिस फली नरीमन, जस्टिस यू.यू. ललित और जस्टिस कुरियन ने इस पर अपना फ़ैसला सुनाते हुए एक बार में तीन तलाक़ को असंवैधानिक क़रार दिया है। चीफ जस्टिस ने अनुच्छेद 142 के तहत अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग करते हुए तीन तलाक़ पर देश-भर में 6 महीने के लिए रोक लगा दी थी।



फ़ैसले में चीफ जस्टिस ने कहा कि यह मामला धार्मिक प्रक्रियाओं से जुड़ा है इसलिए संसद को इस पर क़ानून बनाना चाहिए।

**तलाक़ का बयान कुरान और हदीस के अनुसार** निकाह एक मुकद्दस इस्लामी रिश्ता है जिससे एक मर्द के लिए अजनबी मुसलमान औरत हलाल हो जाती है और अब शौहर को जायज़ अंदाज़ में अपनी इच्छाओं को भी पूरा करने का ज़रिया मिल जाता है। निकाह के जरिए औरत शौहर की पाबंद होती है। इस पाबंदी को ख़त्म करने का नाम तलाक़ है। तलाक़ के कुछ अल्फाज़ मुकर्रर है। तलाक़ के ताल्लुक से कुरान व हदीस में कहा गया है कि पहले उसका जिक्र हो। तलाक़ जो दो बार तक है यानी जिसे बीबी को बग़ैर नया निकाह किए रखा जा सकता है फिर बहाली के साथ रोक लेना यानी बगैर नए निकाह के ही या निकाहों के साथ छोड़ देना। फिर अल्लाह तआला फरमाता है कि अगर तीन तलाक़ उसे दे दी तो अब औरत हलाल न होगी जब तक दूसरे शौहर के पास न रहे। फिर वो दूसरा शौहर अगर उसे तलाक़ दे दें तो इन दोनों पर गुनाह नहीं। वे आपस में मिल जाए। अब पहला वाला उससे निकाह कर सकता है। ये अल्लाह की हदें हैं जो समझदारों के लिए बयान है कुरान पड़ने वाले ग़ौर कीजिए। ग़ैर-मुकालेदीन हलाला को अय्याशी और हराम कहते हैं जबकि हलाला कुरान से साबित है ग़ैर-मुकालेदीन सिर्फ़ हदीस के ही नहीं बल्कि कुरान के भी दुश्मन हैं। किसी औरत से निकाह करने चाहे तो उसकी यही सूरत हैं कि औरत इद्दत गुज़ारने के बाद किसी दूसरे से निकाह करें और जब वह उसे तलाक़ देगा तो इद्दत गुज़ारने के बाद पहले वाला पति उससे निकाह कर सकता है। हलाला इसी को कहते हैं।

मुस्लिम समाज में मुस्लिम महिलाओं की वैवाहिक स्थिति अच्छी नहीं है। कभी कभी तीन तलाक़ की प्रथा के कारण मुस्लिम महिलाओं की स्थिति बहुत प्रभावित होती है इसी आधार पर तीन तलाक़ से पीड़ित महिलाओं के हित के लिए शासन द्वारा रक्षात्मक क़दम उठाया गया है जिससे मुस्लिम महिलाओं के मानव अधिकार की रक्षा होगी तथा वह एक सामाजिक जीवन जीने में सक्षम हो सकेगी।

❑

**संदर्भ**

1. www.googleweblight.com
2. मुस्लिम विधि अकील अहमद

**डॉ. रहीसा तरन्नुम :** अतिथि व्याख्याता शासकीय राज्य स्तरीय विधि महाविद्यालय भोपाल, मध्य प्रदेश

देवनारायण मीणा

# आईपीसी की धारा 497 और उच्चतम न्यायालय

मानव एक सामाजिक प्राणी के रूप में पहचाना जाता है। परिवार से ही समाज की रचना संभव है इसमें रत्ती भर भी शंका नहीं या यूँ कहें कि मानव सभ्यता का उदय परिवार से ही संभव होता है। भारतीय समाज एवं संस्कृति अपने आप में अद्वितीय है। भारतीय मूल निवासियों के सुनहरी व अद्भुत गौरवपूर्ण रीति-रिवाज़ है, तो हिंदू, मुस्लिम, ईसाइ, पारसी आदि की अपनी धार्मिक व नैतिक मूल्यों का आपसी सौहाद्रपूर्ण भाईचारा है जो विविधता में एकता का परिचायक है। भारत में विभिन्न धर्म-संप्रदाय अपने धर्म विशेष की व्यक्तिगत प्रथाओं व मान्यताओं से संचालित होते है किंतु जब बात मानवता की आती है तब धार्मिक मान्यता, प्रथा व रीति-रिवाज़ से उपर भारतीय संविधान को ही सर्वोच्चता प्राप्त है जिसे संविधान की सुरक्षा प्रहरी मानी जाने वाली भारतीय उच्चतम न्यायालय ने समय-समय पर अपने न्यायिक निर्णयों द्वारा सुस्थापित किया है। इसी कड़ी में उच्चतम न्यायालय का 27 सितंबर, 2018 का **जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ** के वाद निर्णय भी मानव अधिकार को सर्वोपरी निर्धारित करता है। ऐसा इसलिए भी क्योंकि भारतीय समाज में काफ़ी लंबे समय से भारतीय दंड संहिता की धारा 497, जो व्यभिचार/जारकर्म को अपराध घोषित करती है? चली आ रही थी जो कि महिलाओं विशेषकर विवाहित महिलाओं के साथ विभेद करता है, इस उपबंध को भारतीय विधि आयोग ने भी हटाने की अनुशंसा की थी। अंततः उच्चतम न्यायालय के पाँच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने भारतीय दंड संहिता की धारा 497 को एक मत से असंवैधानिक घोषित कर दिया।

**परिचय :** भारत में मानव समाज को कई जाति, वर्ग व संप्रदाय में विभाजित किया गया है जिसमें ऊँच-नीच, जातिवाद, धार्मिक उन्माद और छुआछूत जैसी कुप्रथाओं को प्रचलन आज भी विद्यमान है। यहाँ महिला वर्ग और पुरुष वर्ग अपने अधिकार के लिए एकजुट होकर एकता का परिचय कभी नहीं देते हैं, जब कभी भी भारतीय महिला या पुरुष अपने



अधिकार की बात करते हैं तो केवल किसी जाति या धर्म विशेष के लिए ही होता है, संपूर्ण महिला या पुरुष समाज के लिए नहीं। किसी निर्धन परिवार की महिला के साथ ऊँची जाति वाले व्यक्ति के लिए यौन संबंध स्थापित करना काफ़ी सुविधाजनक होता है क्योंकि उस निर्धन परिवार को न तो क़ानून का ज्ञान है और न ही उसके लिए कोई सुविधाजनक क़ानूनी प्रक्रिया ही उपलब्ध होती है। भारत सरकार के आपराधिक आँकड़ें भी यह दर्शित करते हैं कि अधिकतर अपराध निर्धन परिवार जैसे कि मूलनिवासी जनजाति परिवार, निचली जाति मानी जाने वाली अनुसूचित जाति, घुमक्कड़ विमुक्त जाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित सबसे अधिक प्रताड़ित किए जा रहे हैं क्योंकि भारत में अभी तक क़ानून केवल संपन्न वर्गो तक ही सीमित है। परिवार से ही समाज की रचना संभव है इसमें रत्ती भर भी शंका नहीं है। इसलिए परिवार की वृद्धि, विकास, स्वतंत्रता और समुचित सुरक्षा के उपाय के लिए लगभग सभी आधुनिक सभ्य समाज में कई प्रकार के संवैधानिक व वैधानिक क़ानूनों का निर्माण किया गया तथा मानव अधिकार से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों को भी अपनाया गया है जिससे कि मानव समाज का संतुलित व सुरक्षित विकास निरंतर बिना किसी भेद-भाव के होते रहे। किंतु परिवर्तन प्रकृति का अवश्यंभावी नियम है, जिसे रोकना मानवीय वश में नहीं है।

मानव समाज में परिवार वृद्धि के लिए कई रीति-रिवाज़ हैं, जैसे प्रेम, विवाह, सहवास, प्रजनन क्रिया, विवाह-विच्छेद, जन्म-मरण इत्यादि। इन सब को नियंत्रित करने के लिए कई संवैधानिक व वैधानिक क़ानून बनाए गए हैं। भारत में भी दंडात्मक क़ानून के रूप में भारतीय दंड संहिता, 1860, भारतीय साक्ष्य विधि, 1872, भारतीय दंड प्रक्रिया विधि, 1973, अनुसूचित जाति/जनजाति, अत्याचार निवारण, अधिनियम, 1989, नागरिक अधिकार सुरक्षा विधि, 1955, घरेलू हिंसा विधि, 2005, लैंगिक शोषण से बालकों का संरक्षण विधि, 2012, कार्यस्थल पर महिलाओं का लैंगिक शोषण से सुरक्षा विधि, 2013 इत्यादि।

**जारकर्म/व्यभिचार :** यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि महिलाओं का सदियों से शोषण विशेषकर लैंगिक शोषण किसी न किसी प्रकार से अवश्य ही किया जाता रहा है। इसके लिए पूर्णरूप से कौन जिम्मेदार है? यह महत्त्वपूर्ण का प्रश्न भी है। इन्ही में एक शब्द है जारकर्म या व्यभिचार जो कि विवाहित व्यक्तियों के लिए अपराध बनाया गया है जिसके बारे में दुनिया भर के लगभग सभी धार्मिक ग्रंथों व शास्त्रों में भी वर्णन है; इसमें महिलाओं को ही दोषी मानकर दंडित किया जाता रहा है।

जारकर्म या व्यभिचार को 13वीं सदी तक विवाह बिस्तर का स्वैच्छिक उल्लंघन का अपराध माना गया उसके पश्चात् लगभग 15वीं सदी में जो कि लातिनी भाषा से उत्पन्न हुआ है जिसका अंग्रेजी रूप ADULTERY है और इसका हिंदी अनुवाद जारकर्म/व्यभिचार

है। जारकर्म को लगभग सभी देशों में अपराध मानकर केवल महिलाओं को ही दोषी क़रार दिया जाता रहा है।

ब्रिटेन में जारकर्म कोई आपराधिक अपराध नहीं है किंतु मामूली तौर पर यूरोप के कुछ देशों में दंडनीय है।

**शब्दकोष के अनुसार :** जारकर्म, एक विवाहित पुरुष और उसकी पत्नी के अलावा किसी दूसरे व्यक्ति या विवाहित महिला अपने पति के अलावा किसी दूसरे व्यक्ति के साथ स्वैच्छिक यौन संबंध बनाती है।

**सामान्य विधि :** सामान्य विधि में जारकर्म केवल विवाहित महिला की स्थिति में ही कारित होता है किंतु दोनों ही पक्षकार को दायी माना जाता है।

**हिंदु कोड बिल :** भारत में महिलाओं की बदत्तर स्थिति के लिए भारत की पौराणिक पोथी-पंथी जो समाज को पुरुष प्रधान बताती है पूर्णतः ज़िम्मेदार रहा है। किंतु संविधान निर्मात्री प्रारूप सभा के अध्यक्ष एवं स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि मंत्री श्रीमान् बाबा साहब डॉ. भीम राव अंबडेकर ने 11 अप्रैल, 1947 को पेश किया जिसमे पहली बार भारतीय महिलाओं को पुरुष के बराबर अधिकार देने का प्रावधान किया गया था किंतु भारतीय पुरुषवादी कुंठित दक़ियानूसी समाज ने इस बिल को आज तक पास कर क़ानून नहीं बनाया।

**भारतीय दंड संहिता,1860 की धारा 497 :** जारकर्म, जो कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की पत्नी के साथ बिना उस व्यक्ति की सहमति या मौन सहमति के लैंगिक संबंध बनाएगा, जो बलात्कार के अपराध की श्रेणी में नहीं आता है, वह जारकर्म/व्यभिचार का दोषी होगा और दोनों में से किसी को भी कारावास; जिसकी अवधि पाँच वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने, या दोनों से, दंडित किया जाएगा। ऐसे मामले में पत्नी दुष्प्रेरक के रूप में दंडनीय नहीं होगी।

**लॉर्ड मैकॉले :** भारतीय दंड संहिता के प्रथम शिल्पीकार लॉर्ड मैकॉले ने इस उपबंध को दंड संहिता में स्थान नहीं दिया था, जिसके पीछे तर्क दिया गया था कि उस वक्त सभी तीनों प्रेसीडेंसियों से सुझाव व तथ्य संकलित करने के पश्चात जारकर्म को सिविल क्षति के रूप में रखना उचित बताया किंतु जो सुझाव व तथ्य प्राप्त हुए थे उस पर प्रथम विधि आयोग ने यह अनुशंसा की कि भारतीय परिवेश में विभिन्न जाति व वर्ग समुदाय के कारण जारकर्म को जो विवाहित महिला के साथ कारित होती है, दंड संहिता से अलग न करके इस देश की महिलाओं की परिस्थितियों के अनुसार इसकी गंभीरता को सीमित किया जाए। इसके साथ ही दोनों पक्षकार को न्यायालय में जिरह के लिए भेज कर न्यायालय को सशक्त किया जाए कि दोषसिद्धि पर दोषी महिला को विवाह विच्छेद की डिक्री दी



जाय, भले ही उसके पति ने उस महिला का उपयोग किया हो और उसके साथ ही दोषी महिला के अवैध प्रेमी को कारावास या जुर्माना से दंडित किया जाए। किंतु उस वक्त इन अनुशंसाओं को नहीं माना गया और धारा 497 के आधुनिक स्वरूप को ही तत्कालीन सरकार ने स्थान दिया था।

**भारतीय विधि आयोग :** भारतीय दंड संहिता की पुनरीक्षण के लिए भारत सरकार ने सन् 1968 में पाँचवी भारतीय विधि आयोग का गठन किया जिसने अपनी 42वें रिपोर्ट में धारा 497 जारकर्म के संदर्भ में लॉर्ड मैकॉले के कथन का समर्थन करते हुए यह अनुशंसा दी कि ''जारकर्म, जो कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की पत्नी के साथ बिना उस व्यक्ति की सहमति या मौन सहमति के लैंगिक संबंध बनाएगा, जो बलात्कार के अपराध की श्रेणी में नहीं आता है, वह महिला और पुरुष दोनों जारकर्म/व्यभिचार का दोषी होगा और दोनों में से किसी को भी कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने, या दोनों से, दंडित किया जाएगा।''

आधुनिक समय में अन्य देशों की भाँति भारत में भी जारकर्म को एक गंभीर अपराध मानकर समाज में हीनता और वर्ग भेद की खाई बना दी गई जिसमें किसी-न-किसी प्रकार से महिलाओं को ही लज्जित कर उन्हें केवल पुरुष के लिए एक व्यक्तिगत संपति ही समझा जाता रहा है।

भारत ने यातना और अन्य यातनापूर्ण अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध कन्वेंशन (जिसे 10 दिसंबर 1984 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा 'संकल्प सं 39/46' अंगीकृत किया जो यातना के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन) पर 14 अक्तूबर 1997 को हस्ताक्षर किए थे, तथापि भारत ने इसका अनुसमर्थन नहीं किया है।

भारत ने 30 जून, 1980 को महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के विभेद के उन्मूलन पर कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किया और 7 जुलाई, 1993 को इसका अनुसमर्थन किया।

**संवैधानिक उपबंध :** 26 नवंबर, 1949 का दिन भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है जब भारतीय संविधान के छत नीचे समस्त भारत वासियों ने सदियों से चली आ रही दासता व दमनात्मक अत्याचारों की बेड़ियों से मुक्त हो कर स्वतंत्र साँस ली। भारतीय संविधान में महिला व पुरुष के बीच किसी प्रकार से कोई भेद-भाव नहीं किया गया है बल्कि महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान किया गया है जिससे आधुनिक समाज में महिलाएँ अपने आपको किसी भी मामले में पुरुषों की तुलना में कमज़ोर न समझें।

अनुच्छेद 14 -- राज्य, भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता एवं विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 15 -- धर्म, मूलवंश, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी नागरिक

के विरुद्ध कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 15(3) -- अनुच्छेद 15 की कोई बात स्त्रियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने में बाधक नहीं होगा।

अनुच्छेद 21 -- किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

अनुच्छेद 39(क) -- पुरुष व महिला सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार।

अनुच्छेद 39(घ) -- पुरुष व महिला दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन।

अनुच्छेद 39(ड) -- पुरुष व महिला कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोज़गारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों।

**भारतीय उच्चतम न्यायालय :** भारतीय संविधान में न्यायापालिका को विधायिका व कार्यपालिका से पृथक् व स्वतंत्र रखा गया है। न्यायिक प्रणाली में उच्चतम न्यायालय सबसे उंचे पायदान पर है उसके बाद उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालय हैं। सर्वप्रथम, उच्चतम न्यायालय ने **युसुफ अब्दुल अजीज बनाम बंबई राज्य** (1954) एससीआर 930, एआईआर 1954 एससी 321 में जारकर्म को लेकर किंतु 27 सितंबर 2018 को जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ (2018) के वाद में भारतीय दंड संहिता की धारा 497 को यह कहते हुए असंवैधानिक क़रार दिया कि यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14,15 व 21 का उल्लंघन करता है। उच्चतम न्यायालय ने जोसेफ शाइन मामले में यह भी कथन किया कि महिला किसी पुरुष की व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है कि पुरुष की सभी इच्छाओं का पालन करती रहे।

सबरीमाला मंदिर में महिलाओं के प्रवेश पर पाबंदी को भी उच्चतम न्यायालय ने असंवैधानिक मानकर महिलाओं को सबरीमाला मंदिर में प्रवेश का अधिकार दिया।

भारतीय दंड संहिता की धारा 377 जो किसी पुरुष, महिला या जीव-जन्तु के साथ प्रकृति की व्यवस्था के विरुद्ध स्वेच्छया इंद्रिय-भोग करेगा, वह आजीवन या दस वर्ष के कारावास से दंड का उपबंध करती है को भी सुरेश कौशल वाद में असंवैधानिक क़रार दिया।

**पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ** (2017) के वाद में निजता के अधिकार को संविधान के भाग-3 का अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रत्याभूत प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार के अनिवार्य आंतरिक भाग के रूप में समाहित करते हुए संरक्षित मूलभूत अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान किया है। इस प्रकार, आधुनिक समय में उच्चतम न्यायालय सदियों



पुरानी रीति-रिवाज़ जो कि एक मानव को मानवीय जीवन जीने में अतार्किक रूप से सीमित करते हैं उनको संवैधानिक प्रावधानों के अनुकूल परीक्षण कर असंवैधानिक क़रार दिया जा रहा है जो कि सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा व मानवीय हित में हैं। न्यायापालिका से आम नागरिकों को यही उम्मीद है कि मानव को मानव समझ कर समय पर न्याय प्रदान किया जाए।

**जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ (2018) वाद का एक विश्लेषण**

प्रथम विधि आयोग एवं भारतीय दंड संहिता के शिल्पीकार लॉर्ड मैकॉले ने धारा 497, जारकर्म को उपबंधित करने से इनकार किया था फिर भी तत्कालीन सरकार ने धारा 497 को दंड संहिता में उपबंधित कर दिया। इसके पश्चात्, भारतीय संविधान लागू होने के उपरांत धारा 497, जारकर्म का वाद युसुफ अब्दुल अजीज बनाम बंबई राज्य सन् 1954 में उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया तब से लेकर सन् 2018 जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ के निर्णय तक उच्चतम न्यायालय को लगभग 65 वर्ष लग गए। यह तो आधुनिक भारत की बात है जहाँ लगभग 130 करोड़ की आबादी में से 65 प्रतिशत शिक्षित वर्ग की आबादी है। सच में मानवाधिकार, समता और न्याय की बात की जाए तो भारत में आज भी यहाँ के मूलनिवासी जनजातिवर्ग, अनुसूचित जाति निम्नतम वर्ग, घुमक्कड़ विमुक्त जातियां एवं अन्य पिछड़ावर्ग जो सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से कमज़ोर व असमर्थ हैं, वह इन सब अधिकारों से अभी तक किसी न किसी रूप से वंचित हैं। आधुनिक भारतीय लोकतंत्र में न्यायापालिका से यह उम्मीद होती है कि न्याय सही समय पर उपलब्ध हो, यदि न्याय प्राप्ति में अकारण ही विलंब किया जाए तो वह एक लाईलाज बिमारी बन जाता है जिसमें व्यय होता रहता है किंतु परिणाम कुछ नहीं निकलता। न्यायापालिका को बिना किसी भेद-भाव के सभी को न्याय सही समय पर उपलब्ध करवाने के बारे में पारदर्शी प्रक्रियाओं को अपनाना चाहिए जिससे अकारण ही न्याय प्राप्ति में विलंब न हो और यह तभी संभव है जब न्यायापालिका बिना किसी भेद-भाव या पूर्वाग्रह के स्वतंत्र रूप से संविधान के प्रावधानों व मानव अधिकारों को उच्चतम वरीयता प्रदान कर बिना किसी दबाब के कार्य करें अन्यथा लोकतंत्र में न्यायापालिका पर से भी आमजन का विश्वास उठ जाएगा।

**निष्कर्ष :** निःसंदेह, जारकर्म एक भेद-भाव से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। यह विवाहित महिला को पुरुष की पैतृक संपति के रूप में परिभाषित करती है जो कि मानवीय रूप में किसी भी सभ्य समाज में स्वीकार करने योग्य नहीं है। इसका प्रावधान दंड संहिता की धारा 497 में इसलिए किया गया था कि पुरुष वर्ग स्वतंत्रतापूर्वक महिलाओं का लैंगिक शोषण कर सके जिसके पीछे पुरुषवादी काल्पनिक मानसिकता कार्यरत् थी। भारतीय दंड संहिता, 1860 से पहले भी महिला वर्ग का लैंगिक, शारीरिक व मानसिक शोषण किया

गया जिसमें सबसे अधिक प्रताड़ित समाज के कमज़ोर वर्ग मानेजाने वाले मूलनिवासी जनजाति, अनुसूचित जाति, घुमक्कड़ विमुक्त जाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग ही रहे जिन्हें आज तक कभी भी समय पर न्याय नहीं मिला है। जोसेफ शाइन का निर्णय स्वागत योग्य है या फिर निर्धन वर्ग का और भी शोषण करने वाला साबित होगा? परिणाम जो भी होगा कुचला तो हमेशा निर्धन वर्ग ही जाएगा क्योंकि पूँजीपति किसी न किसी रूप से हमेशा बच निकलते हैं। आधुनिक न्याय-प्रणाली को और अधिक पारदर्शी एवं विश्वसनीय होने की आवश्यकता है जिससे आम-जन में न्याय पालिका के प्रति किसी प्रकार का कोई संदेह न रहे। आधुनिक प्रौद्योगिकी समाज में न्याय पालिका को भी तीव्र गति से त्वरित न्याय प्रदान करना अत्यावश्यक हो गया है जिससे पीड़ित को उचित समय पर पक्षपात रहित न्याय समय पर प्राप्त हो। न्याय पालिका की क्रियात्मक धीमी गति के कारण महिलाएँ न तो पहले सुरक्षित व स्वतंत्र थी और न ही आज सुरक्षित व स्वतंत्र महसूस कर पा रही है।

❑

**संदर्भ**


1. लॉर्ड मैकॉले, दंड संहिता प्रारूप, 1837, नोट क्यू
2 भारतीय दंड संहिता, 1860
3. भारत का संविधान
4. 5वाँ भारतीय विधि आयोग, 42वां रिपोर्ट ;1968-71द्ध


**Websites**


1. http://supremecourtofindia.nic.in
2. http://lawcommissionofindia.nic.in
3. https://www.livelaw.in
4. https://indiankanoon.org
5. www.news24.com/World/News/Adultery-is-not-a-crime-UN-20121018
6. https://en.wikipedia.org/w/index.php?title=Special:ElectronPdf&page=Adultery
7. http://hrlibrary.umn.edu/instree/women/engl-wmn.html


**वाद सारणी**


1. युसुफ अब्दुल अजीज बनाम बंबई राज्य (1954) एससीआर 930ः एआईआर 1954 एससी 321
2. सोमित्री विष्णु बनाम भारत संघ एवं अन्य (1985) एसयूपीपी एससीसी 137ः एआईआर 1985 एससी 1618
3. वी. रेवथी बनाम भारत संघ एवं अन्य (1988) 2 एसीसी 72
4. कैलाश व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, टीआरपीसी, 2011(1) क्रि. 138(एससी)
5. वी. कल्याणी बनाम राज्य जरिये पुलिस निरीक्षक एवं अन्य (2012) 1 एसीसी 358
6. सुरेश कुमार कौशल बनाम नाज फाउंडेशन (2014) 1 एसीसी 1ः 2014(2) सीसीएसी 952 एसी
7. शायरा बानो बनाम भारत संघ एवं अन्य (2017) 9 एसीसी 1
8. पुट्टा स्वामी बनाम भारत संघ (2017) 4 एससीसीडी 1806
9. कॉमन कॉज बनाम भारत संघ एवं अन्य (2018) 5 एसीसी 1
10. जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ (2018)



**देवनारायण मीणा** ः शोधार्थी, विधि विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

संतोष बंसल

# आई.पी.सी. 498-ए और उच्चतम न्यायालय : वरदान और अभिशाप

आज से कुछ वर्षों पहले विज्ञान के विषय में यह प्रश्न उठाया जाता था कि विज्ञान की देन, मनुष्य के लिए वरदान है या अभिशाप? और आज के समय सोशल मीडिया के लिए भी यही बात उठ रही है कि संचार और संपर्क ने मानव जीवन को लाभ पहुँचाया या हानि? अब अगर हम इन दोनों विषयों के संदर्भ के साथ आई.पी.सी. 498-ए धारा की बात करें तो उत्तर यही है कि ये सभी सहूलियतें इंसान के फ़ायदे के लिए हैं, किंतु वह स्वयं इनका दुरुपयोग करके अपना नुकसान करता है। वैसे कहावत भी है -- 'Excess of every thing is bad'. अगर जिन ज़रूरतों के लिए इनका उपयोग होना चाहिए, उतना ही हो तो ये हमारे लिए उपलब्धियाँ हैं। इसी तरह 498-ए क़ानून का इस्तेमाल अगर वास्तव में दहेज उत्पीड़न के लिए हो तो जायज़ है किंतु अब लडकियाँ इस क़ानून को दहेज माँगने का इल्ज़ाम लगा, ससुराल वालों को झूठा फँसाने के लिए करने लगी हैं। आए दिन हम अख़बार में ख़बरें पढ़ते हैं कि दहेज प्रताड़ना का केस झूठा साबित हुआ या फिर झूठे केस की वजह से परेशान होकर कई लोगों ने 'सुसाईड' कर लिया। इससे भी अधिक पिछले दिनों अख़बार में ख़बर थी कि अदालत में जज के समझाने के बावजूद, बेवजह साथ न रहने और धन के लालच में लड़की ने पैसा और ज़ेवर उठाया और शादी तोड़ कर चलती बनी। आधुनिकता और अनैतिकता ने बेलगाम लड़के-लड़कियों को विवाह संस्था को तोड़ने वाली कड़ी बना दिया है और तिस पर लडकियाँ शादी तोड़ने के लिए दहेज क़ानून को हथियार की तरह इस्तेमाल करने लगी हैं। इसके पीछे चाहे कारण कोई और व्यक्तिगत रहे हों, लेकिन वे अपनी उन कमियों को छुपा कर ससुराल वालों के ख़िलाफ़ सीधे पुलिस में शिकायत कर देती हैं।

सोशल मीडिया की सहूलियत ने उनके जीवन में 'पेरेंट्स' की दख़लंदाजी बढ़ा दी और वे भी बेटियों के झूठ में आ कर उनका साथ देते हैं। अब लड़कियाँ न तो विवाह के बाद पति के परिवार को अपना मानती हैं और न ही कोई ज़िम्मेदारी समझती हैं एवं लड़की वालों के लिए दहेज का इल्ज़ाम लगा कर लड़के वालों को फँसाना आसान हो गया है और कुछ प्रकरणों में यह धारा महिलाओं के लिए ससुराल वालों को ब्लैकमेल करने का ज़रिया साबित हुई है। पर्याप्त सबूतों के अभाव में भी केवल ऊँची सिफ़ारिश और महकमे के दबाव में लड़के वालों को ज़बरदस्ती प्रताड़ित और दंडित किया जाता है। अतः इस लेख में हम दहेज उत्पीड़न क़ानून की जानकारी के साथ इसके स्याह पक्ष को उजागर करेंगे और अभी हाल में न्यायपालिका द्वारा इसमें किए गए परिवर्तनों की भी जानकारी शामिल करेंगे।

भारतीय समाज में दहेज प्रथा बेहद प्राचीन है और इसका मकसद नव वधू और नव युवक को नई गृहस्थी बसाने के लिए सहयोग देने की भावना थी जिसमें दोनों पक्ष उन्हें उपहार स्वरूप ज़रूरत की उपयोगी वस्तुओं को देते थे, किंतु बाद में यह बिगड़ कर नाजायज़ तरीक़े से कन्या पक्ष से माँग करने के कारण कुप्रथा बन गई और इसकी वजह से लड़की का विवाह उसके माता-पिता के लिए बोझ बन गया, क्योंकि वर पक्ष दहेज की आड़ में वधू पक्ष से नजायज़ और अंधाधुंध माँग करने लगे। तिलक के नाम पर नक़द राशि और सामान की लंबी लिस्ट वधू पक्ष के सामने रखी जाती थी और विवाह के उपरांत वह सारा सामान समाज में सबके सम्मुख दिखाया जाता था, जिससे वह एक होड़ और लालसा बन गई थी। इसके बाद की स्थिति तो अत्यंत भयावह बन गई, जिसमे माँग पूरी न होने पर लड़की को प्रताड़ित किया जाने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस प्रथा के विरोध में 'दहेज प्रतिबंध क़ानून, 1961' आया, जिसके तहत दहेज लेना व देना, दोनों ही अपराध हैं और इसकी धारा तीन के अनुसार ऐसा करने पर तीन से पाँच साल की सज़ा एवं कम से कम पंद्रह हज़ार रुपए के जुर्माने का प्रावधान किया गया। अगर पत्नी यह कहे कि उसके परिवार ने माँगने पर दहेज दिया तो पत्नी व उसके परिवार वाले भी दोषी माने जाते थे एवं सज़ा व जुर्माना दोनों को भुगतनी पड़ती थी। लेकिन अक्सर यही देखा गया कि पत्नी के दहेज देने की बात कहने पर भी पति ये केस नहीं डालते थे और लगातार लड़कियाँ ही अभियोग लगाती रही हैं। लेकिन सातवें-आठवें दशक में लड़कियों को दहेज के लिए मारने-पीटने और उन्हें जलाने के केस बहुतायत मात्रा में आने लगे, जिसको रोकने के लिए दहेज क़ानून 'धारा 498-ए' लाई गई। जिसमें किसी औरत के पति या उसका कोई रिश्तेदार उस औरत के साथ किसी भी प्रकार की क्रूरता करता है तो वह इस धारा के अंतर्गत दंडित हो सज़ा और जुर्माना पाएगा। हिंदू विवाह क़ानून के अनुसार रिश्तेदार से मतलब पति के माता-पिता, भाई-बहन के अलावा, वे सब लोग होते हैं जो किसी-न-किसी रिश्ते से पति से जुड़े होते हैं। इस धारा के अंतर्गत आने के लिए ये ज़रूरी नहीं है कि वे लोग उसी घर में रहते हों, वे लोग दूर रह कर प्रताड़ित कर सकने के ज़िम्मेदार होंगे।

इस तरह कोर्ट द्वारा इस क़ानून के जरिये परिवार और समाज में एक संतुलित और सकारात्मक क़दम उठाया गया और दहेज प्रथा के लिए सख़्त संदेश दिया गया।

वास्तव में इस दहेज क़ानून के आने से सख़्त सज़ा और दंड के कारण दहेज माँगने वाले लोग डरने लगे और कुछ हद तक इस कुप्रथा पर लगाम भी कसी। क्योंकि आई. पी.सी. धारा 498-ए में दोषी को तीन वर्ष तक का कारावास हो सकता है तथा जुर्माने में पत्नी से लिए दहेज का मूल्य व शादी में लिए उपहार जोकि न लौटाए हों, उनका मूल्य भी सम्मिलित होता है। अब प्रश्न है कि उपहार व दहेज में अंतर क्या है? लड़की शादी में जो समान अपने साथ लेकर आती है या उस के पति को या उसके पति के रिश्तेदारों को दिया जाता है, वह उपहार होता है न कि दहेज। क्योंकि ये लड़की के परिवार वालों की तरफ़ से अपनी मर्जी से दिया जाता है। इसीलिए कोर्ट इसे उपहार मानती है। लेकिन जब किसी सामान या पैसे की 'डिमांड' या माँग की जाती है तो वह दहेज कहलाता है। किसी भी प्रकार की माँग जोकि पति या उसके रिश्तेदार लड़की पर दबाव डाल कर पूरा करवाना चाहते हैं, वह दहेज कहलाती है। रिश्तेदारों द्वारा किसी भी बात को मनवाने के लिए उस पर मानसिक या शारीरिक दबाव डालना, जैसे उसको ताने मारे जाना, या किसी भी प्रकार का उस पर बल प्रयोग इस धारा के अंतर्गत आता है। ऐसे में पत्नी तिथी, महीना और वर्ष लिख कर क्रम से अपनी शिकायत एफ.आई.आर. में ये लिखवाए कि दहेज माँगा गया था। पत्नी मार-पिटाई होने पर अपना मेडिकल ज़रूर करवाए और उसे कोर्ट में भी दे। वह यह एफ.आई.आर. दर्ज़ करवाने के लिए अपनी शिकायत सीधे पुलिस थाने में किसी भी अधिकारी को या सीधा 'वूमेन सेल' में भी दे सकती है। तब वहाँ पर समझौते की कार्रवाई चलेगी, अगर समझौता नहीं होता है तो वे इसे पास के कोर्ट के मध्यस्थता केंद्र में भेजेंगे। वहाँ पर भी समझौता न होने की स्थिति में वापस ये फाइल 'वूमन सेल' में आएगी तथा इसके इंचार्ज ए.सी.पी. ऑर्डर से एफ.आई.आर. के ऑर्डर हो जाएँगे। इस प्रक्रिया में वैसे तो लड़की केस के चलते समय अपना सामान 'वूमेन सेल' द्वारा मँगवा सकती है, न देने पर पुलिस लड़की के साथ जाकर ज़बरदस्ती भी ले सकती है अथवा पत्नी कोर्ट में 'एप्लीकेशन' देकर भी अपना सामान ले सकती है। लेकिन जहाँ तक ज़ेवरात की बात आती है, तो पुलिस उनको 'रिकवर' नहीं करवा सकती। इसे कोर्ट में ही साबित करना पड़ेगा कि उसके पास इतने ज़ेवर शादी में मिले थे या कितने उसके पति या उसके रिश्तेदारों को दिए थे।

यद्यपि ये ग़ैर-ज़मानती अपराध है, पर सुप्रीम कोर्ट के आदेश के अनुसार सात साल से कम सज़ा होने के कारण इसमें पुलिस स्टेशन से ही ज़मानत मिल जाती है तथा किसी को भी 'अरेस्ट' नहीं किया जाता है। पुलिस का काम सिर्फ़ दहेज क़ानून धारा 498-ए व अन्य धारा जो भी ज़रूरी हो, उसमें एफ.आई.आर. दर्ज़ कर के चार्जशीट फाइल करना



है। अगर वो चाहे तो पति के रिश्तेदारों को ये कहकर उनका कोई रोल नहीं बनता है, केस में से हटा सकती है, पर पति को चाह कर भी पुलिस केस से नहीं हटा सकती। लेकिन समझौता होने की स्थिति में, दहेज का केस बिना हाई कोर्ट जाए M.M. कोर्ट में ख़त्म हो सकता है। इसी क़ानून के संदर्भ में अभी 2017 में धारा 320 में संशोधन किया गया है और इसके अनुसार अगर पत्नी के साथ क्रूरता का दोष तीन महीने के अंतराल का है तो पति को हाई कोर्ट जाने की ज़रूरत नहीं। इस प्रकार, इस क़ानून का उद्देश्य दहेज जैसी सामाजिक बुराई को समाप्त करना तथा ससुराल में होने वाले अत्याचारों से महिलाओं को संरक्षण देना है। इसीलिए भारत में दहेज हत्या एवं प्रताड़ना से महिलाओं को बचाने के लिए 1983 में भारतीय दंड संहिता में धारा 498-ए को जोड़ा गया। इस धारा के अंतर्गत महिला की केवल एक शिकायत पर बिना किसी अन्य विवेचना के पुलिस पति सहित अन्य ससुराल वालों पर कार्यवाई कर सकती है। इस क़ानून के संदर्भ में समस्या असली शिकायतों के कारण नहीं, बल्कि 'फ्रॉड' या नक़ली और झूठी 'कंप्लेंट' की वजह से पैदा होती है। अब जबकि 'कैश डिमांड' की प्रथा ख़त्म हो चुकी है और विवाह में उपहारों का चलन दोनों परिवारों की ओर से होता है तथा दोनों पक्षों का ख़र्च भी लगभग एक जैसा होता है, ऐसे में वर पक्ष के ऊपर दहेज का झूठा इल्ज़ाम लगाना उनको भयभीत करता है। यही कारण है कि आजकल लड़के वाले शायद संबंध तय करते हुए डरने लगे हैं एवं विवाह संबंध बनाना मुश्किल हो गया है। रिश्तों में किसी का किसी पर विश्वास नहीं रहा और शादी-ब्याह का संबंध जोड़ना जुआ खेलने जैसा हो गया है।

इस क़ानून के दुरुपयोग का मुख्य कारण यह है कि यह क़ानून आपराधिक है, परंतु इसका स्वरूप पारिवारिक है। पारिवारिक किसी भी झगड़े को दहेज प्रताड़ना के विवाद के रूप में परिवर्तित करना अत्यंत सरल है और जिसका फ़ायदा ख़राब लड़कियाँ उठा रही हैं। इस क़ानून के तहत परिवार के सभी सदस्यों को अभियुक्त के रूप में नामज़द कर दिया जाता है और सभी अभियुक्तों को जेल भेज दिया जाता है। क्योंकि उपहारों को दहेज की श्रेणी में रखकर और प्रताड़ना का फर्जी इल्ज़ाम लगा कर पति और उसके परिवार को झूठा फँसाया जा सकता है और ऐसी स्थिति में लड़के वालों के सम्मुख बड़ी विकट और गंभीर समस्या पैदा हो जाती है क्योंकि ये एक ग़ैर-ज़मानती, संज्ञेय और असंयोजनीय अपराध है। अब सवाल यह है कि इस क़ानून के बनने के बावजूद समाज से दहेज जैसी समस्या का तो समाधान हुआ नहीं, बल्कि सभी परिवारों में एक अतिरिक्त भय और बोझ व्याप्त हो गया है। क्योंकि भारत में विवाह का बड़ा बाज़ार बनता और बढ़ता जा रहा है, जिसमे 'डेस्टीनेशन मैरिज' और 'थीम' के साथ शो बाज़ी और सजावट में करोड़ों रुपए ख़र्च किए जा रहे हैं। शादियों में 'एक पेटी' एवं 'दो पेटी' जैसे 'कोड वर्ड्स' में करोड़ो रुपयों को पानी की तरह बहाने का हिसाब-क़िताब रहता है और दोनों पक्ष अपना अपना रसूख दिखाने

में लगे रहते हैं। एक ओर जहाँ उपहार के नाम पर सोने और हीरे के आभूषणों का चलन बढ़ा है, वहीं रस्मों-रिवाज़ के तौर पर बेइंतिहाँ आयोजनों और भोजन व्यवस्था में फ़िज़ूल व्यंजनों के दो-ढाई सौ के बड़े 'मीनू' में अन्न की बहुत बर्बादी होती है। उन सब पर तो न कोई रोक है न टोक है और न ही ऐसे लोगों पर लगाम कसी जा रही है। इसके विपरीत सीधे-सादे लोगों को, जो दहेज के ख़िलाफ़ हैं, उन्हीं को इस क़ानून का दुरुपयोग कर तंग किया जाता है। लड़की वाले पति और उसके परिवार पर दहेज का अभियोग लगा कर 498-ए की धारा के अंतर्गत फँसा देते हैं। यह तो यही हुआ कि दहेज के लिए तो नए रास्ते बन गए और कुरीति का भी ख़ात्मा नहीं हुआ, उलटे इसके ग़लत इस्तेमाल से समाज में एक अन्य अपराध का जन्म हो गया। आज कितने ही पुरुष इस धारा के शिकार हुए हैं और उनका जीवन ख़राब हुआ है। कई संगठन इस धारा के दुरुपयोग के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं। माननीय सुप्रीम कोर्ट ने भी कुछ प्रकरणों में धारा 498-ए के दुरुपयोग की बात कही है और उच्चतम न्यायालय ने इसे 'लीगल टेरेरिज्म' भी कहा है।

अतः यह बात सच है कि महिला उत्पीड़न और दहेज के ख़िलाफ़ एक सख़्त क़ानून की ज़रूरत हमें है, लेकिन इस क़ानून के दुरुपयोग को रोकने के लिए भी कुछ क़दम उठाने चाहिए। हालाँकि इस तरह के मामलों के देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने इस धारा के अंतर्गत सीधे गिरफ़्तारी पर रोक लगाई थी और जुलाई 2017 में सुप्रीम कोर्ट ने दहेज प्रताड़ना निरोधक क़ानून की धारा 498-ए के हो रहे दुरुपयोग को रोकने के लिए व्यापक दिशा-निर्देश भी जारी किए थे जिसके अनुसार दहेज प्रताड़ना के मामले पुलिस के पास न जाकर एक मौहल्ला कमेटी के पास जाएँगे, जो उस पर अपनी रिपोर्ट देगी। कमेटी की रिपोर्ट के बाद ही पुलिस देखेगी कि कार्यवाही की जाए या नहीं? शीर्ष अदालत द्वारा जारी इन निर्देशों के लागू होने के छह माह बाद 31 मार्च, 2018 को विधिक सेवा प्राधिकरण परिवर्तन करने के लिए सुझाव का तय हुआ और मामले की सुनवाई अप्रैल में करने का निश्चय किया गया। उस समय जस्टिस ए.के. गोयल और जस्टिस यू.यू. ललित की पीठ ने उत्तर प्रदेश के एक मामले में कहा कि धारा 498-ए को क़ानून में रखने का मकसद पत्नी को पति या उसके परिजनों के हाथों होने वाले अत्याचार से बचाना था, वह तब जब ऐसी प्रताड़ना के कारण पत्नी के आत्महत्या करने की आशंका हो। लेकिन दहेज प्रताड़ना को लेकर आई.पी.सी. की धारा 498-ए के प्रावधानों में बदलाव में 27 जुलाई, 2017 के दो जजों की पीठ के फ़ैसले में, 14 सितंबर, 2018 को सुप्रीम कोर्ट के तीन जजों की बेंच ने संशोधन किया है। चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा, जस्टिस ए.एम. खानविलकर और जस्टिस डी.वाई. चंद्रचूड़ की पीठ ने उस गाईड लाइन को हटा दिया है, जिसमें स्थानीय परिवार कल्याण समितियों की रिपोर्ट से पहले गिरफ़्तारी पर रोक लगाई गई थी। अदालत



ने दहेज प्रताड़ना केस में बड़ा बदलाव करते हुए पुलिस को सीधे गिरफ़्तारी का अधिकार दे दिया है और अभियुक्त की गिरफ़्तारी हो या नहीं, अब पुलिस तय करेगी। इस फ़ैसले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि हर राज्य के डी.जी.पी. मामले की जाँच से जुड़े पुलिस अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण और जागरुकता अभियान चलाएँ। हालाँकि पीठ ने इस मामले में संतुलन बनाने की बात कहते हुए कहा है कि पति व अन्य के हितों के संरक्षण के लिए अदालत को उन्हें ज़मानत या अग्रिम ज़मानत देने का अधिकार है। ऐसे मामलो में पति या उनके पक्ष की अर्ज़ी मिलते ही अदालत को तुरंत सुनवाई करनी चाहिए और यदि दोनों पक्ष समझौते के लिए तैयार हैं तो वो संबंधित हाई कोर्ट जा सकते हैं।

ग़ौरतलब है कि 'दहेज का विवाह पर बुरा प्रभाव पड़ता है', ये कहते हुए 23 अप्रैल, को भारत के मुख्य न्यायधीश दीपक मिश्रा ने यह तय करने के लिए सहमति व्यक्त की थी कि क्या उच्चतम न्यायालय के जुलाई 2017 के आदेश, जो आरोपी लोगों की तत्काल गिरफ़्तारी पर प्रतिबंध लगाता है और उसी दिन उन्हें ज़मानत देने की इज़ाज़त देता है, इससे दहेज उत्पीड़न विरोधी क़ानून हल्का हुआ है? इससे पूर्व दिशा-निर्देशों की एक शृंखला में न्यायमूर्ति गोयल की बेंच ने कहा था कि सामाजिक कार्यकर्ताओं, गृहणियों, सेवा-निवृत्त व्यक्तियों, आदि से जुड़ी स्थानीय क़ानूनी सेवा प्राधिकरण द्वारा स्थापित परिवार कल्याण समितियों की रिपोर्ट आने तक शिकायत पर कोई गिरफ़्तारी नहीं होनी चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत पूर्ण न्याय के लिए सुप्रीम कोर्ट की असाधारण शक्तियों का आह्वान करके ये आदेश पारित किया गया था। इस दौरान केंद्र सरकार की ओर से पेश अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल पी.एस. नरसिम्हा द्वारा कहा गया था कि ये आदेश 'व्यवहारिक' नहीं था। उन्होंने कहा कि राज्यों ने केंद्र को वापिस लिखा था कि परिवार कल्याण समितियों की स्थापना और उनकी निगरानी 'लागू करने योग्य' नहीं है। याचिकाकर्ता के लिए पेश वरिष्ठ वकील इंदिरा जय सिंह ने कहा कि अदालत को केवल तभी दिशा-निर्देश देना चाहिए जब क़ानून में ख़ामी हो। इस पर ''आई.पी.सी. की धारा 498-ए (दहेज उत्पीड़न) लिंग न्याय और अधिकारों की रक्षा करती है। महिलाओं पर किसी भी प्रकार का क्रूर उपचार नहीं होना चाहिए -- लेकिन पति की स्वतंत्रता भी एक कारक है -- क्या दोनों का जुड़ाव किया या सुलझाया जा सकता है?'' मुख्य न्यायधीश ने ज़ोर दिया था। इससे पहले मुख्य न्यायाधीश ने यह भी कहा था कि 27 जुलाई के आदेश ने धारा 498-ए के उद्देश्य को यातना में रहने वाली विवाहित महिला के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए एक प्रभावी क़ानून के रूप में हटा दिया था। आगे उन्होंने कहा, ''निर्णय (27 जुलाई) विधायी डोमेन में प्रवेश कर रहा है -- हम इस विचार से सहमत नहीं हैं क्योंकि यह महिला के अधिकारों को प्रभावित करने के लिए उत्तरदायी है।'' यह भी नोट किया जाना चाहिए कि एन.जी.ओ. की ओर से याचिका पर सुनवाई करते मुख्य न्यायधीश मिश्रा

ने 13 अक्टूबर, 2017 को राजेश शर्मा के फ़ैसले के संदर्भ में कहा था, ''हम इस मामले में पारित फ़ैसले के साथ समझौते में नहीं हैं। हम क़ानून नहीं लिख सकते, हम केवल क़ानून की व्याख्या कर सकते हैं।''

इसीलिए तीन जजों की पीठ ने 14 सितंबर, 2018 को पुराने फ़ैसले में संशोधन करते हुए कहा कि मामले की शिकायत की जाँच के लिए कमेटी की ज़रूरत नहीं है। पुलिस को ज़रूरी लगे तो वह आरोपी को गिरफ़्तार कर सकती है। कोर्ट ने कहा कि आरोपी के लिए अग्रिम ज़मानत का विकल्प खुला हुआ है। कोर्ट ने आरोपियों की गिरफ़्तारी पर लगी रोक हटाते हुए कहा कि 'विक्टिम प्रोटेक्शन' के लिए ऐसा करना ज़रूरी है। गिरफ़्तारी को लेकर सुप्रीम कोर्ट के सिद्धांत में कोर्ट ने कहा कि CRPF की धारा 41 में ग़ैर-ज़मानती अपराध में गिरफ़्तारी को लेकर संतुलन क़ायम किया गया है। मनमानी गिरफ़्तारी को रोकने के लिए CRPF 41 में साफ प्रावधान है कि अगर पुलिस किसी को गिरफ़्तार करती है तो पर्याप्त कारण बताएगी और न गिरफ़्तार करने का भी कारण बताएगी। सुप्रीम कोर्ट ने अपने फ़ैसले में परिवार कल्याण कमेटी बनाने के फ़ैसले को ख़ारिज कर दिया है और कहा, इसकी इज़ाज़त नहीं दी जा सकती। दरअसल इससे पूर्व एक याचिकाकर्ता के लिए पेश वरिष्ठ वकील इंदु मल्होत्रा ने कहा था कि अपराध की जाँच पुलिस का काम है, न कि ग़ैर-क़ानूनी व्यक्तियों से बनी परिवार कल्याण समिति का। 2017 के फ़ैसले को पलटते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि ऐसा लगता है कि 498-ए के दायरे को हल्का करना महिला को इस क़ानून के तहत मिले अधिकार के ख़िलाफ़ जाता है। अदालत ने इस मामले में एडवोकेट वी. शेखर को कोर्ट का सलाहकार बनाया था और सुनवाई के दौरान चीफ जस्टिस ने कहा कि सिस्टम में जो गैप है उसे आदेश के जरिये भरा जाए। हमें ये देखना है कि क्या गाइडलाइंस जारी कर क़ानून के गैप को भरा गया है? क्या अनुच्छेद 142 का इस्तेमाल का फ़ैसला देना सही था? साथ ही ये भी देखना ज़रूरी है कि इस आदेश से क्या क़ानून कमज़ोर हुआ है? वहीं केंद्र सरकार की ओर से पेश ASG नरसिंहा ने कहा था कि सुप्रीम कोर्ट का पिछले साल जुलाई का फ़ैसला व्यवहारिक नहीं है और इसे लागू करना मुश्किल है।

दरअसल सुप्रीम कोर्ट उस याचिका पर सुनवाई कर रहा था, जिसमें दहेज उत्पीड़न के मामलों में तत्काल गिरफ़्तारी पर रोक के सुप्रीम के फ़ैसले पर दोबारा विचार करने की माँग की गई थी।

इसमें ग़ैर-सरकारी संगठन न्यायधार का कहना था कि इससे महिलाओं को परेशानी हो रही है और फ़ैसले के बाद शिकायत नहीं आ रही है। मानव अधिकार मंच नाम के NGO ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दाख़िल कर माँग की थी कि कोर्ट को उस संबंध में दूसरी गाइड लाइन बनाने की ज़रूरत है क्योंकि कोर्ट के फ़ैसले के बाद दहेज उत्पीड़न



का क़ानून कमज़ोर हुआ है। याचिका में नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की रिपोर्ट का हवाला देते हुए कहा गया कि 2012 से 2015 के बीच 32,000 महिलाओं की मौत की वजह दहेज उत्पीड़न था।

यह बात सच है कि महिला उत्पीड़न और दहेज के ख़िलाफ़ एक सख़्त क़ानून की ज़रूरत है, लेकिन इस क़ानून का दुरुपयोग रोकने के लिए भी कुछ क़दम चाहिए। क्योंकि इस क़ानून की आड़ में आजकल लड़कियाँ शादी के बाद अपनी मनमानी करती हैं और इस क़ानून का दबाव डाल कर अपनी मनचाही माँग पूरी करवाती है। लड़की के परिवार वाले भी अपनी पुत्री की 'डिमांड्स' पूरी करने के लिए झगड़े पर उतारू रहते हैं और उन्हें दहेज क़ानून का इल्ज़ाम लगाने का डर दिखाते हैं। एक तरह से आजकल लड़की वाले अपनी माँगों की पूर्ति के लिए लड़के वालों को डरा-धमका कर 'डिमांड्स' करते हैं और उनकी न मानने पर तुरंत दहेज क़ानून के गंदे और झूठे आरोप लगा कर, लड़के और उसके परिवार को क़ानूनी कार्यवाही में फँसा देते हैं। कई बार ग़लती लड़की और उसके परिवार वालों की होती है, लेकिन लड़के और उसके परिवार वालों की बेवजह परेशानी और शर्मिंदगी सहनी पड़ती है। आजकल धारा 498-ए के तहत फँसाना बड़ी आम बात हो गई है, जिसकी वजह से शादियाँ और परिवार टूट रहे हैं। कई पुरुष इस धारा में मुकदमे लड़ रहे हैं और अदालतों के चक्कर काट रहे हैं, लेकिन उन्हें राहत नहीं मिल पा रही है। कई संगठन इस धारा के दुरुपयोग के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ रहे हैं।

वास्तव में अब इस क़ानून की आड़ में लड़की वाले अपनी 'डिमांड्स' के रूप में दहेज लड़के वालों से माँग रहे हैं। उदाहरण के तौर पर लड़की के लिए आधुनिक सुविधाओं युक्त मकान और फर्नीचर, अब लड़की के परिवार वालों की शर्त बन गया है।

भारत सरकार ने भी फर्जी मुकदमों की बढ़ती संख्या देखते हुए धारा 498-ए में संशोधन की आवश्यकता को समझा है, लेकिन फिलहाल इस दिशा में कोई ठोस क़दम नहीं उठाए गए हैं। लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि 498-ए यानी दहेज उत्पीड़न को लेकर क़ानून पहले से ही है, ऐसे में जाँच कैसे की जाए, इसको लेकर गाइड लाइन बनाने का आदेश कैसे दे सकते हैं? दहेज उत्पीड़न के मामले में जाँच कैसे की जाएगी? ये जाँच एजेंसी क़ानून के हिसाब से तय करेगी। तब उच्चतम न्यायलय ने अहम फ़ैसला देते हुए कहा कि **दहेज प्रताड़ना मामले में गिरफ़्तारी हो या नहीं, अब पुलिस तय करेगी।** मगर पुलिस को गिरफ़्तार करने या न करने के उचित कारण बताने होंगे। इस प्रकार सितंबर 2018 में उच्चतम न्यायलय ने 'मीडिएशन' की व्यवस्था हटाते हुए, सीधे पुलिस को फिर से गिरफ़्तारी का अधिकार दे दिया है। क्योंकि इस में अधिकतर 'फेक केस' बनाने वाले समझौते के लिए भी तैयार नहीं होते एवं समय ख़राब होता रहता है। हालाँकि 'वीमेन सेल' का प्रयास सराहनीय होता है तथा उसके बाद 'लीगल सेल' में सरकारी वकील द्वारा

केस सुलझाने और समझाने की कोशिश प्रशंसनीय है एवं इस तरह की शिकायतों की बढ़ती तादाद से कोर्ट में मुकदमों की संख्या कम होने से भार एवं भीड़ दोनों घटती है। किंतु ज़्यादातर मसले फिर भी हल नहीं होते और वे साल-छह महीने की अवधि के बाद पुलिस के आई.ओ. (इन्वेस्टीगेशन ऑफिसर) द्वारा तहक़ीक़ात के लिए भेज दिए जाते हैं। इसीलिए सुप्रीम कोर्ट ने सारे केस सीधे ही पुलिस के पास भेजने का निर्णय लिया और गिरफ़्तारी का फ़ैसला भी पुलिस को दे दिया। वैसे 'वीमेन सेल' या 'लीगल सेल' में समस्या हल नहीं हो रही थी क्योंकि समाधान करने वाले तो ख़ुद ही बैठ कर आपस में मामला सुलझा लेते हैं। इसीलिए झूठे केस या स्वार्थ सिद्ध करने वाले ही अपना फ़ायदा हासिल करने के लिए सालों-साल उलझे रहते हैं और बिना ठोस सबूत और गवाही के ऐसे मामले लंबे खींचते रहते हैं।

जो परिवार इसमें उलझे हुए हैं, वे अपना दर्द ख़ुद ही समझते हैं। कई पुरुष अपनी नौकरी छोड़कर इस उम्मीद में कोर्ट कचहरी के चक्कर काट रहे हैं कि एक दिन उन्हें इंसाफ़ मिलेगा। इस धारा में फर्ज़ी मुकदमों का आलम यह है कि न्यायालय भी सबसे पहले यह जानने का प्रयास करते हैं कि आरोप मनगढंत तो नहीं? इसीलिए दहेज उत्पीड़न क़ानून का दुरुपयोग करने वालों के ख़िलाफ़ भी कड़ा क़ानून आना चाहिए, जिससे इसकी आड़ में अपना कोई निजी स्वार्थ सिद्ध करने वालों पर लगाम कसी जा सके।

अंततः मैं यही कहूँगी कि सोशल मीडिया और डिजिटल दुनिया के इस आधुनिक युग में रिश्तों-नातों के अर्थ बहुत बदल गए हैं और युवा पीढ़ी 'मैरीज' को झमेला समझते हुए 'लिव-इन-रिलेशनशिप' में रहना चाहती है। ऐसे में विवाह उनके लिए ग़ैर-ज़रूरी और उनकी आज़ादी में ख़लल डालने वाला रिवाज़ है। कभी-कभी अपनी पसंद से भी शादी करने के बावजूद या 'पेरेंट्स' के दबाव में 'अरेंज मैरिज' करने पर भी, लड़कियाँ 'एडजस्ट' न करने के कारण दहेज उत्पीड़न का झूठा आरोप लगा देती हैं। इन परिस्थितियों को देखते हुए 'उच्चतम न्यायलय द्वारा वर पक्ष के बचाव में नया क़ानून लाने की आवश्यकता है, जिससे वधू पक्ष के लोग झूठे आरोप लगाने से डरें। यधपि दहेज क़ानून उत्पीड़न क़ानून और धारा 498-ए के केस में आरोप के बिंदु अलग अलग हो सकते हैं, लेकिन अपने वकील के माध्यम से पति को उन सभी आरोपों को झूठा साबित करना चाहिए। इसी लिए जब तक उच्चतम न्यायालय द्वारा इस क़ानून में पुरुषों के पक्ष को देखते हुए संशोधन नहीं होता, तब तक इस लंबी प्रक्रिया के तहत अपना पक्ष सबूत सहित पेश करना चाहिए और 'सत्यमेव जयते' को ध्यान में रखते हुए ख़ुद को निर्दोष साबित करना चाहिए। किसी भी क़ानूनी लड़ाई लड़ने में बहुत धैर्य रखना पड़ता है और अगर कोई व्यक्ति 498-ए जैसी धारा का सामना कर रहा है तो उसे और भी अधिक सहनशक्ति दिखानी पड़ती है। अब तक 498-ए के जिन पीड़ित पुरुषों ने केस जीते हैं, उन्होंने लंबी क़ानूनी लड़ाई लड़ी और ख़ुद को निर्दोष साबित किया। इसीलिए भारतीय समाज के दहेज प्रथा पर क़ानूनी प्रतिबंध लगाने के साथ, सामाजिक तौर पर भी जाग्रति की आवश्यकता है। विवाह की रस्मों-रिवाज़ सादगी पूर्ण तरीक़े से, ज़्यादा ताम-झाम के बिना होनी चाहिए और उपहारों का चलन भी कम कर देना चाहिए पर होना यह चाहिए कि लड़का-लड़की आत्म-निर्भर बन कर आपसी सहमति से घर बनाए और उनके माता-पिता इसमें अपना सहयोग दें। अगर दोनों साथ रहकर जीवन न चला सकें, तो भी आपसी सहमति से अलग हो जाएँ और इसमें भी सुप्रीम कोर्ट को ऐसे क़ानून लाने चाहिए, जिससे तलाक़ के मामले दुनिया के और देशों की तरह जल्दी निपटाए जा सकें। इसके साथ साथ दहेज उत्पीड़न या 498-ए क़ानून का दुरुपयोग न हो, इसके लिए अदालत द्वारा केस झूठा साबित होने पर लड़की वालों के लिए भी सख़्त सज़ा और जुर्माने का प्रावधान करना चाहिए। लेकिन उच्चतम न्यायलय जब तक कोई 'लॉ' नहीं लाता और विवाह में ख़र्च की सीमा तय नहीं करता, तब तक शादी-विवाह में लेन-देन बंद करने की सामाजिक जागरुकता ज़रूरी है। कहीं ऐसा न हो भारतीय संस्कृति का मूल आधार 'परिवार' व्यवस्था ही टूट-बिखर जाए?

❑

**संतोष बंसल** : ए-1/7, मियाँवाली नगर, पश्चिम विहार, दिल्ली-110087

दिनेश दिनकर

# 'पारिवारिक क़ानून एवं पारिवारिक मूल्य' विषय पर संगोष्ठी

22 फरवरी को विधि भारती परिषद् (पंजीकृत) द्वारा मालवीय स्मृति भवन सभागार में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में एक बेहद गंभीर एवं उपयोगी विषय पर देश के विभिन्न हिस्सों से आए बुद्धिजीवियों ने अपने अनुभव साझा किए जिससे सभागार में उपस्थित सभी श्रोता लाभान्वित हो रहे थे। यह राष्ट्रीय संगोष्ठी तीन सत्रों में संयोजित की गई थी।

**प्रथम सत्र का** सत्र संयोजन डॉ. पूनम माटिया, सुप्रसिद्ध कवयित्री एवं शिक्षाविद् ने किया।

प्रो. डॉ. अवनीश कुमार, अध्यक्ष, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग एवं निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने विषय पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि आज के बच्चों में पारिवारिक मूल्यों की कमी नज़र आ रही है और इसके पीछे एकल परिवारों के बढ़ने का मुख्य कारण है। हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए बच्चों में संस्कारों की निरंतरता बनाने पर ज़ोर देना होगा। वैज्ञानिक विधि के अनुसार हम बच्चों को प्रामाणिकता के आधार पर ही बातें सीखा सकते हैं। बच्चों के सवालों के जवाब हमें पुरानी रूढ़िवादी सोच की बजाय वैज्ञानिक तथ्यों की सहायता से देते हुए बच्चों में रूचि, जागरूकता, मानवीय मूल्यों की भावना पैदा कर सकते हैं। तकनीकी युग में हमें समय के बदलाव के साथ बच्चों में भी मानवीय मूल्यों की शिक्षा देते रहना उपयुक्त रहेगा। भविष्य की समस्यायों को देखते हुए हमें आज ही इनके निदान पर काम करना होगा।

मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति श्री मंजू गोयल, पूर्व न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा कि क़ानून कभी मूल्यों के अनुसार चलता है तो कभी समाज ही क़ानून का नेतृत्व करता है। बड़े दुःख की बात है कि आज क़ानूनों के कारण परिवार टूटते जा रहे हैं। परिवार केवल और केवल प्रेम के आधार पर ही जुड़ा रह सकता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिवार जुड़े रह सकते हैं क्योंकि प्रेम पर किसी भी प्रकार का वैज्ञानिक दृष्टिकोण लागू नहीं हो सकता है। पहले पुरुष कमाने के लिए घर से बाहर जाता था और स्त्री घर-रसोई को संभालती थी। रिश्तों में, कर्त्तव्यों में एक संतुलन एवं जवाबदेही तय होती थी किंतु आज स्त्री-पुरुष दोनों ही कमाने के लिए बाहर जाते हैं और रसोई की ज़िम्मेदारी पत्नी पर ही टिकी हुई है। पुरुष घर पहुँचकर पत्नी के काम में हाथ नहीं बँटा रहा है क्योंकि वह पुरुष-प्रधान समाज वाली मानसिकता से ग्रस्त है। ऐसे अनेक मामले हैं जिनमें छोटी-छोटी बातों से शुरू हुई असहमति तलाक़ तक पहुँच रही हैं। चूँकि दोनों आर्थिक रूप से स्वावलंबन की स्थिति में हैं इसलिए दोनों अपने निर्णयों एवं विचारों को सर्वोपरि साबित करने की ज़िद्द में माननीय न्यायालयों की शरण में आ रहे हैं।

जब शादी टूटती है तो दोनों परिवारों को तकलीफ़ होती है किंतु सबसे ज़्यादा परेशानी उस पत्नी को होती है जो ससुराल कभी जाएगी नहीं और मायके की सहायता सीमित समय तक ही होती है। और अपना घर छोड़कर कहीं जाने में उसको डर लगता है क्योंकि उसके मन में लोगों के प्रति अविश्वास की भावना पैदा हो चुकी होती है और हाँ, हमारे समाज की मानसिकता से हम सभी भलीभाँति परिचित हैं।

**उदाहरण के रूप में एक केस** का हवाला देते हुए न्यायमूर्ति मंजू गोयल ने कहा कि एक लड़की की हत्या का आरोप उसके ससुराल वालों पर लगा हुआ था। सुनवाई में लड़की के पिता ने बताया कि ससुराल वाले उसकी बेटी को प्रताड़ित करते रहते थे। लड़की कभी फ़ोन करती थी तो कभी चिट्ठी भी लिखती थी। फिर एक दिन उसके मरने की खबर मिली। मैं न्यायाधीश की भूमिका में उस मामले की सुनवाई कर रही थी और तब सोचने लगी कि ऐसे पिता के लिए क़ानून में कोई सज़ा क्यों नहीं है जो अपनी बेटी की वास्तविक स्थिति को जानते हुए भी सचेत नहीं होते हैं और लड़की की हत्या के बाद कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाते रहते हैं। मैं समझती हूँ कि ऐसे मामलों में ससुराल पक्ष के साथ मायके वाले भी आरोपी नज़र आते हैं। और हां, ऐसे मामलों में यह बात भी गंभीर है कि समाज के डर से ऐसे पिता अपनी बेटी को तलाक़ के लिए सहमति नहीं दे पाते हैं और फिर अन्य छोटे बेटे-बेटियों की शादी की चिंता को लेकर हमेशा दुविधा में रहते हैं और इसी बीच शादीशुदा बेटी की हत्या/आत्महत्या की ख़बर मिलती है।

**एक अन्य उदाहरण :** तलाक़ के एक मामले में पति-पत्नी 5-6 वर्षों से अलग रह रहे थे। एक बार सुनवाई के लिए पत्नी अपने बेटे के साथ आई हुई थी। पति ने कुछ खाने के पैकेट अपने बच्चे को देने की कोशिश की किंतु उनके बेटे ने पैकेट लेने से इनकार कर दिया और वह उस शख़्स यानी अपने पिता को भी नहीं पहचान पा रहा था। ऐसे दृश्य में वह पिता कोर्ट में सबके सामने रोने लगा। हम सोचते हैं कि पुरुष कठोर दिल का होता है किंतु ऐसे मामलों में हमेशा ग़लती पुरुषों की भी नहीं होती है। इस केस में पत्नी एक बार अपने किसी रिश्तेदार के साथ अपने बैडरूम में थी और कमरा

अंदर से बंद किया हुआ था। अचानक घर में पति के आने पर उनकी ग़लती पकड़ी गई और पति ने गुस्सा होकर उसे पीट दिया। पत्नी ने अपने मायके में केवल पिटाई की बात कही थी। काउंसलिंग करते हुए उन दोनों को समझाया और एक साथ रहने की सलाह दी। दोनों आपसी सहमति एवं परिवारों के सहयोग से साथ रहने लगे किंतु एक महीने के बाद फिर से कोर्ट में एक सवाल के साथ पेश हुए और सवाल यह था कि हम दोनों में से विजयी कौन रहा था? बहुत से परिवारों के टूटने के पीछे यह भी बहुत बड़ा कारण रहता है।

शादी के कुछ समय बाद पति-पत्नी में आकर्षण की कमी होने लगती है और जब बच्चा पैदा होता है तो वह बच्चा उन दोनों के मध्य एक पुल का काम करता है। इस बच्चे रूपी पुल के लिए दोनों एक लंबे समय तक एक-दूसरे की गंभीर गलतियों को नज़रंदाज करते रहते हैं। समाज की एक ग़लत मानसिकता यह भी है कि सौतेली माँ और बेटी की सास को बहुत बदनाम किया जाता रहा है। आधिकारिक आँकड़े तो ख़ैर नहीं है किंतु औसत रूप से देखा जाए तो सौतेली माँ और बेटी की सास भी काफ़ी अच्छी होती हैं।

**एक अन्य उदाहरण :** इकलौता बेटा अपने माँ-बाप का लाड़ला था और उसकी पत्नी भी अपने अभिभावकों की इकलौती संतान थी और जब लड़की बहुत छोटी थी तब उसकी माँ की मृत्यु हो गई थी। उस लड़की को माँ का प्यार नहीं मिला था और उसे माँ-बेटी के प्यार का अनुभव भी नहीं था। शादी के बाद उसकी सास उसे लाड़-प्यार से रखने लगी। उसके पहनावे, खान-पान में सुझाव देने लगी, मार्गदर्शन करने लगी क्योंकि माँ की मृत्यु के कारण उसे वह समझ,संस्कार नहीं मिले थे। अब यहाँ उस बहू को लगने लगा कि उसकी सास उसे परेशान कर रही है और उसे अपने नियंत्रण में करने की कोशिश कर रही है। इन्हीं बातों को लेकर पति-पत्नी में कहासुनी होने लगी और मामला कोर्ट में पहुँच गया। सभी पक्षकारों को सुनने के बाद यही सुझाव दिया गया कि लड़का अपने मम्मी-पापा से अलग होकर अपनी पत्नी के साथ रहे ताकि यह शादी टूटने से बच जाए। अब ऐसे मामलों के लिए हम क़ानून को दोषी नहीं ठहरा सकते बल्कि लोगों की मानसिकता के कारण समाज में ऐसे मामले बढ़ रहे हैं। पहले कहा जाता था कि रोटी, कपड़ा और मकान ही इंसान की मुख्य ज़रूरत होती है। किंतु आज केवल और केवल छत मुख्य ज़रूरत है इसी बात को ध्यान में रखते हुए परिवारों को टूटने से बचाने का प्रयास किया जा रहा है।

विशिष्ट अतिथि : श्रीमती सत्या बहिन, पूर्व सांसद, राज्यसभा ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि पारिवारिक मूल्य समाज के प्रत्येक धर्म, वर्ग, जाति के परिवार से संबंध रखते हैं। अगर परिवारों में अधिकार और कर्त्तव्य समान रूप से चलते रहें तो ही परिवार ख़ुशहाल रह सकता है अन्यथा पारिवारिक मूल्यों में ह्रास होने के नकारात्मक प्रभाव प्रत्येक समाज में भी नज़र आने लगते हैं। नई-नई शादी के बाद पति अधिकार की बात करता



है और कर्त्तव्य निभाने की ज़िम्मेदारी पत्नी पर थौप दी जाती है। इस स्थिति में दोनों के रिश्तों में संतोष की कमी होने लगती है।

आज प्रत्येक ज़िले में एक-एक फैमिली कोर्ट है। किंतु संबंधित मामले लगातार बढ़ते जा रहे हैं। मेरा विचार है कि अब समय आ गया है कि प्रत्येक ज़िले में पांच-छह फैमिली कोर्ट खोलने चाहिए।

इस बात में भी सच्चाई है कि कुछ महिलाएँ इन क़ानूनों का दुरुपयोग करती रही हैं और यह बात न्यायालयों एवं संसद तक पहुँच चुकी है।

**एक उदाहरण :** एक महिला का पति राजस्थान में बैंक अधिकारी था और महिला अपने ससुराल वालों के साथ दिल्ली में रहती थी। महिला ज़िद करने लगी कि मैं राजस्थान नहीं जाऊँगी, अगर पति को मेरे साथ रहना है तो उनको दिल्ली पोस्टिंग करवानी होगी। अन्यथा मैं तलाक़ ले सकती हूँ। मेरे राज्यसभा सांसद रहते हुए यह मामला मेरे संज्ञान में आया। एक परिवार को टूटने से बचाने के लिए मैंने अपने स्तर पर प्रयास किया और उस अधिकारी का तबादला दिल्ली करवाया गया।

मगर फिर वह महिला ज़िद करने लगी कि पति को घर-जमाई बनकर रहना होगा। पति और उसका परिवार इस शर्त के लिए तैयार नहीं हुआ। महिला ने ससुराल वालों पर दहेज केस दर्ज़ करवा दिया और पति की शादीशुदा बहन, मामा इत्यादि रिश्तेदारों को जेल भिजवा दिया। अपने रिश्तेदारों को जेल से बाहर निकलवाने के लिए पति ने दस लाख रुपए देकर अलग-अलग रास्ते अपना लिए।

**एक अन्य उदाहरण :** एक बार जेल भ्रमण के दौरान देखा कि एक जवान लड़की और उसकी बुढ़ी माँ जेल में बंद थीं। अधिकारियों से पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि इन पर दहेज प्रताड़ना का मामला विचाराधीन है। केस दर्ज़ करने के समय लड़की दूसरे राज्य में हॉस्टल में थी और बुढ़ी माँ काफ़ी अस्वस्थ चल रही थी। पति-पत्नी में किसी बात को लेकर अनबन हुई और सभी को दहेज प्रताड़ना के केस में पुलिस अधिकारियों द्वारा मज़बूरन गिरफ़्तार करना पड़ा।

माँ-बाप मेहनत से बच्चों का पालन-पोषण करते हैं और बच्चे अफसर बनकर बड़े शहरों/विदेशों में रहते हैं किंतु माँ-बाप को गाँव में ही असहाय छोड़ देते हैं। क़ानून अपना काम करता रहेगा। हमें समाज का हिस्सा होने के नाते परिवारों को एकजुट रखने का प्रयास जारी रखना होगा। अगर वकील-न्यायाधीश ऐसे परिवारों को टूटने से बचाएँ तो यह बहुत पुण्य का काम होगा।

मुख्य अतिथि : न्यायमूर्ति श्री एस.एन. कपूर, पूर्व न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय एवं पूर्व सदस्य, राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग, नई दिल्ली ने अपने विचारों को साझा करते हुए पारिवारिक मूल्यों के पतन के कारणों को रेखांकित किया।

हम अपने माता-पिता की सेवा-सत्कार नहीं करते हैं तो हमारे बच्चे भी हमारा मान-सम्मान नहीं करेंगे।

जब पति-पत्नी आपस में बहस और झगड़ा करते हैं तो स्वाभाविक है कि बच्चे ऐसे व्यवहार को देखते हुए नकारात्मक सोच की प्रवृत्ति अपनाने लग जाते हैं।

बच्चों का व्यवहार आनुवांशिक (जेनेटिक्स) होता है। अगर कोई पिता शराबी है तो बेटा गौतम बुद्ध कैसे बनेगा? और अगर घर में सास-बहू की हमेशा तू-तू-मैं-मैं होती है तो उनकी बेटी भी यही सीखने लगती है और अपने ससुराल में इन्हीं अनुभवों का प्रदर्शन करती है।

आज इंसान अनेक तरह की चिंताओं से घिरा हुआ है। सड़क पर अत्यधिक जाम के कारण दफ़्तर, कारखाने में देरी से पहुँचता है फिर कार्यस्थल पर मानसिक तनाव। पसीने से लथपथ, थका-हारा घर पहुँचता है तो बीवी बच्चों की चिक-चिक। अब ऐसे में इंसान का गुस्सा बाहर निकलना स्वाभाविक है जिससे घरों में कहासुनी के मामले बढ़ते जा रहे हैं।

पति अपने दोस्तों संग मौज-मस्ती पर हजारों रुपए ख़र्च करके घर पहुँचता है और बीवी द्वारा घर-खर्च में बढ़ोतरी की बात करने पर समस्या एक विकराल रूप ले लेती है।

**अपनी सेवा से एक उदाहरण :** तलाक़ के लिए एक मामला आया हुआ था कि एक बार लड़का शादी के बाद अपनी पुरानी प्रेमिका से मिलने बार में गया हुआ था और वहाँ से फ़ोन करके अपनी पत्नी को सब बातें सच बताते हुए कहता है कि उन्हें उसकी पूर्व प्रेमिका से फ़ोन पर बातें करनी है तो कर सकती है।

उसकी पत्नी इस घटना के बाद तलाक़ लेने की ज़िद करती है। सुनवाई के दौरान लड़के ने बताया कि मुझसे पहले लड़की भी एक बार अपने पूर्व प्रेमी के साथ कहीं घूमने गई थी और मुझे फ़ोन करके बात करने के लिए मुझसे पूछती है। अब मैंने उसकी तरह व्यवहार किया तो यह विरोध क्यों कर रही है? आगे श्री कपूर जी चिंता जाहिर करते हुए कहते हैं कि ऐसे दंपतियों में प्रेम-भाव, सहयोग, समर्पण की कमी को देखते हुए हैरानी होती है कि ये कहानियाँ वास्तविक हैं या कोई फ़िल्मी कहानी हैं ?

**एक अन्य उदाहरण :** तीन दशक पहले के मामले में पति 1200 रुपए की सैलरी लेता था, जिसमें पत्नी को 300 रुपए रसोई ख़र्च के लिए देता था। कुछ समय बाद पत्नी ने रसोई ख़र्च के लिए मिलने वाले रुपयों में बढ़ोत्तरी की बात कही। माह के अंत में होने वाली चिक-चिक अब प्रत्येक दिन होने लगी। मामला कोर्ट में आया और पति का पक्ष जानने पर पति ने कहा कि मैं इसको 300 रुपए से ज़्यादा नहीं दूँगा। क्योंकि घर की जो रद्दी-पेपर बिकती है व रुपए वह स्वंय रखती है, मुझे नहीं देती है। अतः उनमें से ही घर ख़र्च के बजट को एडजस्ट करे।



तलाक़ के ऐसे अनेक मामले हैं जिनको सहयोग भावना के आधार पर ही निपटाया जा सकता है किंतु पति-पत्नियों के अड़ियल स्वभाव के कारण मामलों की संख्या और सुनवाई बढ़ती जा रही है।

हम सब जानते हैं कि क़ानूनी लड़ाई काफ़ी महंगी है और बहुत से गरीब पीड़ित काग़ज़ी कार्रवाई में ही घबराने लगते हैं। मैं विधि के छात्रों से अनुरोध करता हूँ कि पढ़ाई के बाद दो-दो महीने का समय निकाल कर इन पीड़ितों की मदद कीजिए, इस समय को ट्रेनिंग प्रोग्राम समझ सकते हो। इस प्रक्रिया से आपका अनुभव बढ़ेगा और इन ग़रीब पीड़ितों को सुझाव एवं सहयोग मिल जाएगा।

और बात को विराम देने से पहले आपको बताना चाहूँगा कि फैमिली कोर्ट की एक सुखद बात यह है कि यह केवल हिंदू दंपतियों के लिए नहीं है बल्कि देश में रहने वाले सभी धर्मों के लोगों के लिए है।

अध्यक्ष : पद्मभूषण डॉ. सुभाष कश्यप, लोकसभा के पूर्व महासचिव एवं प्रतिष्ठित संविधान विशेषज्ञ ने अपने अध्यक्षता उद्‌बोधन में कहा पारिवारिक क़ानून में दहेज प्रताड़ना, तलाक़, पोषण भत्ता इत्यादि क़ानून संकलित हैं। क़ानून अच्छा है या बुरा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस क़ानून को लागू करवाने वाला अधिकारी कैसा है, कितनी ईमानदारी से अपना काम कर रहा है। पारिवारिक मूल्य हमेशा सामाजिक मूल्यों से ही आते हैं। देश की बड़ी त्रासदी यह है कि लोगों का चारित्रिक ह्रास जारी है। हमें विचार करना होगा कि हमारे सामने आदर्श कौन हैं? नेता, अभिनेता, खिलाड़ी, पत्रकार, शिक्षक, चिकित्सक में से ऐसी कौन-सी महान् शख्सियत है जिसे हम अपना आदर्श मानकर चलें या अपने बच्चों को उनकी अच्छी बातों के बारे में बताते रहें। आज प्रत्येक क्षेत्र में चारित्रिक ह्रास की घटनाएँ हम मीडिया में देखते रहते हैं, जिससे हमारे सामने आदर्श व्यक्ति की कमी भी पारिवारिक मूल्यों में गिरावट का प्रमुख कारण है। पहले हम स्वामी विवेकानंद जी, दयानंद सरस्वती जी, गौतम बुद्ध जी, बी.आर. अंबेडकर जी, अब्दुल कलाम जी को अपना आदर्श मानते थे और उनसे प्रेरित होकर अपने कार्य करते थे। आज विचार करके देखिए कि हम सभी में से कितने ऐसे लोग हैं जो अपने बच्चों को इनकी जीवनी, बेहतरीन कार्य, इत्यादि के बारे में बताते हैं ?

जीवन में हमें अपने लिए लक्ष्मण रेखा खींचनी होगी ताकि हम अपने क्षेत्रों में अच्छे काम कर सकें और अपने बच्चों के सामने एक आदर्श व्यक्ति बनने का प्रयास कर सकें।

श्रीमती संतोष खन्ना ने सभी अतिथियों का धन्यवाद करते हुए कहा कि :--

- पारिवारिक मूल्यों पर चलते हुए ही हम पारिवारिक क़ानूनों का लाभ ले सकते हैं। अगर पारिवारिक मूल्यों की कमी होगी तो पारिवारिक क़ानून भी अधिक लाभकारी सिद्ध नहीं होंगे।

- **प्रथम सत्र सम्मान समारोह** में श्री अरविंद जैन (उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता एवं महिला सरोकारों के जानकार) को 'राष्ट्रीय विधि भारती सम्मान से सम्मानित किया गया।
- सुश्री अनिता कुंडू (ऐवरेस्ट शिखर एवं विश्व के अन्य उच्चतम शैल शिखरों की विजेता) को राष्ट्र भारती सम्मान से सम्मानित किया गया। साथ ही डॉ. जयप्रकाश मानस (प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं हिंदी सेवी) और श्री लक्ष्मण राव (प्रतिष्ठित साहित्यकार) को भी राष्ट्र भारती सम्मान प्रदान किया गया।

## दूसरा सत्र

सत्र संचालन : डॉ. उमाकांत खुवालकर, पूर्व उपसचिव, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली

मुख्य अतिथि : डॉ. राजकुमार, विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, बी.एम.यू. रोहतक (हरियाणा)

● पारिवारिक क़ानूनों के सिद्धांत के अनुसार दो मुख्य तथ्य हैं। (अ) Fault policy ... जिसमें गुनहगार मालूम हो जाए।

(ब) Non fault policy... जिसमें बेगुनाह साबित हो जाए।

**एक उदाहरण :** एक विदेशी महिला भारत में आकर यहाँ के नागरिक से शादी करती है और कुछ समय बाद वह अपने देश लौट जाती है। वापिस आने के लिए मना करती है तो वह पीड़ित पुरुष न्यायालय की शरण में आता ज़रूर है किंतु न्यायालय के सामने यह आदेश देने के लिए यहाँ कोई समय सीमा ही नहीं है कि कौन गुनहगार है और कौन बेगुनाह। एनआरआई के तलाक़ एवं धोखाधड़ी मामलों की भी यही स्थिति है।

बच्चों को बेशक उपयुक्त संस्कार मिले हों (जो आज पति-पत्नी हैं) किंतु कई बार परिस्थितियाँ भी विपरीत होती हैं। अतः हर मामले में पारिवारिक मूल्यों को संदेह के घेरे में रखना ठीक नहीं होगा।

आस्ट्रेलिया, इंग्लैंड, स्काटलैंड इत्यादि बहुत से देशों में तलाक़ के केसों को निपटाने के लिए समय-सीमा निर्धारित है ताकि पीड़ित पक्ष एक समय के बाद नए तरीक़े से अपनी ज़िंदगी शुरू कर सकें। अगर तलाक़ के जिस मामले में सहमति से साथ रहना संभव नहीं हो तो पाँच साल या दस साल के बाद उन्हें तलाक़ देकर अलग रहने की अनुमति माननीय न्यायालयों द्वारा दे देनी चाहिए और दोनों पक्षकारों की 60-70 वर्ष की आयु के बाद तलाक़ लेने की अपील पर रोक लगा देनी चाहिए ताकि अन्य उपयोगी मामलों पर बिना समय गँवाए सुनवाई जारी रहे।

मुख्य अतिथि : श्री अरविंद जैन, अधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय एवं महिला सरोकारों के जानकार।



- बड़ी हैरत की बात है कि आगे अंधेरा है, पीछे लाशें और हम समाधान ढूँढ रहे हैं।

बेशक हम सभी समय-समय पर बदलाव की, समाधान की, आदर्शों की बात करते आ रहे हैं किंतु व्यावहारिक रूप से कार्य नहीं हो पा रहे हैं।

पीड़ित और आरोपी, दोनों क़ानून एवं न्याय को लक्ष्य लेकर चल रहे हैं। मैं जमीनी स्तर पर काम करने के बाद मिले अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि आज ज़िला कोर्ट, हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों के लिए क़ानून अलग-अलग हो चुके हैं। हर कोई क़ानून एवं फ़ैसलों को अपने स्तर पर दे रहा है।

हमारी यह मानसिकता बन चुकी है कि जो जायज़ है वह पुरुषों के लिए है। और जो नाजायज़ है वह महिलाओं के लिए है।

विवाह के बाद पैदा हुए बच्चे को उसके पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी माना जाता है। बिना विवाह के पैदा हुए बच्चे को केवल और केवल उसकी माँ के भरोसे छोड़ दिया जाता है कि वही उसका पालन-पोषण करेगी। हम तलाक़ के बाद महिलाओं को गुज़ारा भत्ता दे रहे हैं, विधवाओं को भत्ता दे रहे हैं। किंतु सौतेले बच्चों को या बिना शादी के पैदा हुए बच्चे के लिए कोई अधिकार नहीं है न ही उस माँ के लिए कोई आर्थिक सहायता की माँग कर रहे हैं।

देश में बेशक लोकतंत्र है किंतु घरों में तानाशाही ज़रूर चल रही है चाहे वह पुरुष की हो या महिला की। समाज में अनेक उदाहरण मिल जाएँगे। हमने गड़बड़ी अपनी नींव में ही कर रखी है। हम शुरू से ही पुत्र को उत्तराधिकारी साबित करते रहें। जिससे भ्रूण हत्या का एक काला दौर हमने देखा है और हमने प्रत्येक क़ानून में कुछ पेंच छोड़े हुए हैं जिससे आज यह समस्या बनी हुई है। वर्ष 1954 में बने एक क़ानून में अगर हिंदू लड़का/लड़की अन्य धर्म के बच्चे से शादी करता है तो हिंदू परिवार उसका बहिष्कार करने के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हें विधर्मी/अन्य धर्म की बहू या दामाद स्वीकार नहीं है और हम धर्म-निरपेक्ष होने की बात करते हैं।

अनेक सरकारें महिलाओं को आगे बढ़ाने की बात करती रही हैं। मगर मैं पूछना चाहूँगा कि आज़ादी के 70 वर्षों में कितनी महिलाएँ क़ानून मंत्री बनी हैं? कितनी महिलाएँ उच्चतम न्यायालय की चीफ जस्टिस आफ इंडिया रही हैं। हम बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ चिल्ला रहे हैं मगर इन सवालों के जवाब नहीं ढूँढ रहे हैं।

अध्यक्ष : डॉ. शकुंतला कालरा, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, मैत्रयी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं प्रतिष्ठित बाल साहित्यकार।

- पारिवारिक क़ानून में जब भी तलाक़ की बात आती है तो बच्चों पर क्या दुष्प्रभाव पड़ता है, इस ओर कम ही ध्यान दिया जाता है। पहले संयुक्त परिवार होते थे,

फिर एकल परिवारों का चलन बढ़ा और अब तो एकल अभिभावक वाली स्थिति बन चुकी है जिसमें माँ अलग शहर में और पिता अलग शहर में। इस तरह आर्थिक रूप से समृद्ध होने की चाह में बच्चों में संस्कारों की कमी होना लाज़िमी है।

बच्चों को तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखना बंद कर दीजिए, उनके सामने आदर्श अभिभावक बनकर दिखाएँ अन्यथा मौका मिलते ही हमारे बच्चे यूं ही घर से भागते रहेंगे। कोई बचपन में भाग रहा है, कोई अपने पसंद के पार्टनर के साथ शादी करने के लिए भाग रहा है तो कोई दूसरे शहर में नौकरी के नाम पर घर से पीछा छुड़ा रहा है। हमें बच्चों में सकारात्मक सोच एवं सहयोग की भावना से पारिवारिक मूल्यों को बढ़ावा देना होगा।

समाहार एवं आभार : श्री अनुरागेंद्र निगम, निदेशक, आई.ए.एस. मिशन, दिल्ली

- जानकर बड़ी हैरत हुई कि माता-पिता की संपत्ति में बेटा उतराधिकारी होगा, बहू को कोई हिस्सा नहीं मिलेगा। अगर लड़का सेना में शहीद हो गया हो और सरकार हमारी लाचार बनी रहे। उस स्थिति में, शहीद सैनिक की विधवा पत्नी कहाँ जाएगी? बच्चों को केंद्र में रखते हुए भी हमारे क़ानून निर्माण करने चाहिए। जनता के बीच कार्य करने के लिए पढ़े-लिखे आईएएस-आईपीएस अधिकारी होते ज़रूर हैं किंतु जनता के प्रतिनिधि होने को ढाल बनाकर कम पढ़े-लिखे नेता संबंधित नीतियों को जनता की भलाई की बजाय अपनी सुविधानुसार परिवर्तित करवाने लगते हैं और हम केवल सवाल उठाते रहते हैं कि सत्तर वर्षों में देश क्यों नहीं बदला। अभिभावकों को अपने मोह को नियंत्रित करते हुए नाबालिग बच्चों को मोबाइल फोन, दुपहिया वाहन, कार नहीं देने चाहिए। माता-पिता को उन्हें संस्कार देने पर बल देना चाहिए।

## तीसरा सत्र

सत्र संयोजन : डॉ. के.एस.भाटी, अधिवक्ता उच्चतम न्यायालय एवं पूर्व रजिस्ट्रार, भारतीय विधि संस्थान

मुख्य अतिथि : डॉ. प्रमोद मलिक, एसोसिएट प्रोफेसर, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, सोनीपत, हरियाणा

- अक्सर समाज में तुलना होती है कि पुरुषों द्वारा महिलाओं पर अत्याचार किए जाते रहे हैं किंतु सच्चाई यह है कि महिलाओं द्वारा ही महिलाओं का अत्यधिक शोषण एवं विरोध किया जाता है। दहेज उत्पीड़न के मामलों में सास-बहू एक दूसरे पर भारी दिखाई देती हैं। अब सबरीमाला मंदिर का ही उदाहरण लें तो मालूम होगा कि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद भी महिलाओं को सबरीमाला मंदिर में प्रवेश की इज़ाज़त नहीं दी जा रही है। फ़ैसला सुनाने वाली बैंच में माननीय न्यायाधीश इंदू कुमार जो स्वयं महिला हैं वह इस फ़ैसले पर सहमत नहीं थीं। हमारे यहाँ क़ानून उचित बन रहे हैं, समस्या यह है कि हम जागरूक ही नहीं हो पा रहे हैं जिससे लोगों द्वारा विषय-वस्तु की कम जानकारी होने से मनगढ़ंत आरोप लगाने शुरू कर दिए जाते हैं और सरकार, व्यवस्था और समाज को दोष देने लगते हैं। परिवार, समाज, देश हमारा है अतः हमें जागरूक होकर परिवार कल्याण, पारिवारिक मूल्यों और बेहतर समाज बनाने में अपना प्रयास एवं योगदान करते रहना होगा।

अध्यक्ष : डॉ. प्रवेश सक्सेना, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, जाकिर हुसैन कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार

- हम कहते रहते हैं कि घर के पुरुष अपने बुजुर्गो को देखते हुए ही पुरुष प्रधान वाली सोच रखते हुए अपनी पत्नी को डांटते रहते हैं और कुछ मामलों में पिटाई करने में भी नहीं हिचकते हैं। यहाँ कहना उचित होगा कि कुछ युवा दंपती अपने बुजुर्गों की नक़ल न करके स्वयं की सकारात्मक सोच को तैयार करते हुए ख़ुशहाल जीवन यापन कर रहे हैं और एक-दूसरे को भावनात्मक सहयोग दे रहे हैं। इसी सकारात्मक सोच का परिणाम है कि आज बहुत सी महिलाएँ कामकाजी भूमिका के साथ परिवार में भी अपनी सशक्त भूमिका निभा रही हैं। हर पारिवारिक मूल्य, संस्कार हम अपने अभिभावकों से सीखें यह ज़रूरी नहीं। अच्छी-अच्छी बातें हम अपने पड़ोसियों, रिश्तेदारों और साथियों से भी सीख सकते हैं।

धन्यवाद ज्ञापन : डॉ. उषा देव, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, माता सुंदरी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार

- अभी भी समय है कि हमें संभलना होगा। स्वंय में सुधार करना होगा। हम अपने बच्चों को अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर तो बना रहे हैं किंतु अच्छे इंसान नहीं बना पा रहे हैं। छोटी किंतु गंभीर बात है कि आज अभिभावक अपने बच्चों को छोटे-छोटे काम सिखाने की बजाय स्वयं ही व्यस्त रहते हैं। बागबानी, भोजन तैयार करना, साफ़-सफ़ाई, बाज़ार के कुछ छोटे-छोटे काम बच्चों को समय रहते सिखाते रहने चाहिए ताकि उनमें स्वावलंबन और सहयोग की भावना पैदा होती रहें और परिवार में एक-दूसरे की अहमियत को समझते रहें। अक्सर नव-दंपतियों में इन्हीं छोटी-छोटी बातों को लेकर मनमुटाव होते हैं और मामले न्यायालयों तक पहुँच जाते हैं और दोनों पक्षों की आपसी सहमति न होने पर दोष पारिवारिक क़ानूनों को दिया जाता है।

कुल मिलाकर 'पारिवारिक क़ानून और परिवारिक मूल्यों पर यह संगोष्ठी बड़ी लाभप्रद रही। इसमें देश-भर से आए अध्यापकों, छात्रों, विद्वानों, अधिवक्ता आदि ने भाग लिया। ❑

**दिनेश दिनकर :** सोनीपत (हरियाणा), 9911994774, अटैचमेंट क्षेत्र

Dr. Parmod Malik

# Implication of Decriminalisation of Adultery in India

It is correctly said that law is not static but is dynamic. Law keeps on changing or adapt itself with the changing times. otherwise, it becomes obsolete. Most of the present Indian laws were enacted at the time of pre-independence era or in the nineteenth century. Surprisingly most of the laws have been prevailing today from 1860 with minor amendments. The recent decision of the hon'bleSupreme Court has made adultery unconstitutional.. The Court has also validate the live in relationship, then what is the need to make adultery illegal which make the extra marital relation illegal. The researcher tries to find out the implication of this judgement in the society. Whether it will really makes the women at par with men equal in the society. Section 497 of IPC 1860 used to be read with Section 198(2) of the Code of Criminal Procedure 1973 in the matters of prosecution for offences against marriage.According to Section 198 (1) of the Code of Criminal Procedure,1973, only the "aggrieved party" can bring forth a complaint in cases of adultery. Section 198 (2) clarifies that only the husband of the erring wife is the "aggrieved party" for purposes of Section 198 (1).

**Historical and Legislative Development**

If we see the historical background of the law of adultery, it was inserted as section 497 in the India Penal Code in 1860 when the position of women was not good. In 1860, child marriages were prevailing at that time. Polygamy was prevalent. Widow remarriage was not allowed. Women were treated as property of the father of the husband. At that time, this law was enacted that when any outsider indulges in adulterous relation with the wife of the husband, the husband can complaint against that outsider. It was justified at that time. But now time has changed. Women are participating in almost all fields even in defence sector too. She has right to choose.



**Section 497 of the Indian Penal Code 1960 reads as :** "Whoever has sexual intercourse with a person who is and whom he knows or has reason to believe to be the wife of another man, without the consent or connivance of that man, such sexual intercourse not amounting to the offence of rape, is guilty of the offence of adultery." This offence was non-cognisable where husband has to file private complaint against that person who has adulterous relation with his wife. The process from filing complaint to disposal of the complainant is very long. It is not easy to prove adultery as it has to be proved by circumstantial evidence.

In 1971, the Law commission of India recommended in its 42nd report to change the law as this law is bias towards wife.

In 2003, the Malimath committee also recommended to make this law gender neutral but government has not implemented the recommendation of the committee at that time.

"Article 15(3) of the Constitution is an enabling provision which permits the State to frame beneficial legislation in favour of women and children, to protect and uplift this class of citizens. Section 497 is a penal provision for the offence of adultery.

**Judicial Journey**

In the year 1951, first time petitioner **Yusuf Aziz** has challenged the validity of section 497 of IPC 1860 as it violates the right to equality. It discriminates with the men. Petitioner contended that the adultery law violated the fundamental right of equality guaranteed under Articles 14 and 15 of the Constitution that women cannot be held as adulterous, but went one step further to claim that women could not be brought under the purview of this section as "it is commonly accepted that it is the man who is the seducer, and not the woman."The Supreme Court held that making a special provision for women to escape culpability was constitutionally valid under Article 15(3) that allows such a law.

In another case of **Somitri Vishnu** in 1985, the Supreme Court held that man has right to complaint against another man. If this law does not give permission to the women to complaint, then women too has no right to file complaint against men. The Supreme Court held that men were not allowed to prosecute their wives for the offence of adultery in order to protect the sanctity of marriage. For the same reason, women could not be allowed to prosecute their husbands.

In 1988 in **Rewati case**, it challenged the right given to husband but not to wife to file complaint against her husband, but court held that making this section valid as it helps to debar the wife to become accused which helps to resolve the matrimonial disputes and makes institution of marriage survive.The Supreme Court held that not including women in prosecution of adultery cases promoted "social good". It offered the couple a chance to "make up" and keep the sanctity of marriage intact.

**W. Kalyani Vs. State** wherein the apex court recognised the gender bias in Section 497. "The court in Kalyani (supra) observed that 'The provision is currently under criticism from certain quarters for showing a string gender bias. ...It held that woman in an illicit relationship with a married man cannot be punished for adultery despite being an abettor.

The Supreme Court observed that adultery law was a "shield rather than a sword". The court ruled that the existing adultery law did not infringe upon any constitutional provision by restricting the ambit of Section 497 to men.

**Conclusion and Suggestions**

Time has come when we have to redefine our law as per present situations as most of the laws are obsolete. There are as many 4000 laws are there in India. The present government has repealed some of the acts which are irrelevant today.It is necessary for the legislature to enact the law as per need of the society and it is the duty of the judiciary to eradicate the laws which are like weeds in the society.This judgement will encourage the live in relationship as it decriminalise extra marital affairs. It will also encourage the spouse to make the marriage just an agreement, not sacrosanct which was the real character of the Hindu marriage. It may also encourage the pre-marriage agreement for division of property and money. On the other side it also ended the discrimination against wife as it will give her right to choose which is part and parcel of democratic society.

This judgement was passed after considering/seeing the living style of the metro cities, but more than 60% people of this country resided in the villages where social values are prevalent today too.

This judgement made this law gender neutral as no one, neither husband nor wife has now right to complaint. Both have now right to choice and can make relation outside marriage. Now wife has also liberty to make relation with any one outside the marriage without the consent of the husband. As per Justice Indu Malhotra, this controversial section is a pre-constitutional law which was framed by English People at the time of imperialism in the year 1860 so there would be no presumption of constitutionality in a pre-constitutional law. She asserted that a law which deprives women of the right to prosecute is not gender-neutral. Under Section 497, the wife of the adulterous male cannot prosecute her husband for marital infidelity. This provision is, therefore, ex facie discriminatory against women.

It will encourage the other crimes also as the parties will shift, to other cases as there is no remedy available in this law. Cases of divorce may increases as it debars the spouses to file case under this law.Wife may file cases against her husband in cruelty and dowry related provisions.Now victim husband cannot complaint against the outsider who has adulterous relation with his wife. Even in both cases, the husband right to force other person and to get rid of his wife from the clutches of that adulterous man will stop.

But as per researcher, it is pertinent to mention that it will not affect the ground of adultery as ground for divorce.

If we see the history, there were very few cases filed under section 497 IPC. Moreover, husband could not prove this charge in most of the cases.And if any spouse wants to file case for divorce, he or she can go for cruelty as a ground of divorce rather than adultery.

Now under the pressure of husband, the wife can file cases of section 354 or section 376 against the adulterous man otherwise she has no right to live with the husband.

Most important thing is if any wife is found to indulge in live in relationship or adultery, the husband has force to give maintenance in the case of divorce. We would be not surprised to see that time will come when adultery will be civil wrong in India too.

Justice Malhotra said, "It would be unrealistic to proceed on the basis that even in a consensual sexual relationship, a married woman, who knowingly and voluntarily enters into a sexual relationship with another married man, is a "victim", and the ...Section 497 IPC read with Section 198(2) of the Cr.P.C. only empowers the aggrieved husband of a married wife who has entered into the adulterous relationship to initiate proceedings for the offence of adultery.

The historical background in which Section 497 was framed, is no longer relevant in contemporary society. It would be unrealistic to proceed on the basis that even in a consensual sexual relationship, a married woman, who knowingly and voluntarily engaged in adultery. It was held by majority of the judges that now the adultery cannot be a crime but it can be only ground of divorce as a civil offence.

❑

**References**


1. The Law Commission of India Report of 1971 (42nd report)
2. The Malimath Committee Report on Criminal Law Reforms of 2003
3. Yusuf Aziz vs. State of Bombay AIR 1954 SC 321
4. Sowmithri Vishnu vs. Union of India AIR1985 SC 1618
5. V Revathy vs. Union of India (1988) 2 SCC 72
6. Joseph Shine vs. Union of India 2017



**Dr. Parmod Malik :** Assistant Professor Scale-III, Co-ordinator,Centre for IPR studies Department of Laws, BPS Women University, Khanpur Kalan Sonepat (Haryana), Pin-131305, **Telefax :** 01263-283723,
**Mobile :** +91 9466725404, **e-mail :** parmodipr@gmail.com

डॉ. साधना गुप्ता

# दिशा भ्रमित संस्कृति से साक्षात्कार करवाता काव्य-संग्रह 'समय का सच'

जनाधर्मी साहित्यकार जीवनानुभवों का प्रयोग अपने जीवन एवं कार्यों में ठीक उसी प्रकार करते हैं जैसे खेत में पानी लगाया जाता है। इसी की शाब्दिक अभिव्यक्ति है सन्तोष खन्ना का कविता संग्रह 'समय का सच'। 'यथा नाम तथा गुण' नवीन सहस्त्राब्दी में क़दम बढ़ाते जन-मन के अभावों, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं को वाणी देने वाला यह काव्य-संग्रह उन सभी समस्याओं की ओर सहृदय अनुशीलक का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास हैं जिनसे आम आदमी का सरोकार है।

स्वतंत्रता के नाम पर वादों के प्रभंजन झेल चुकी कविता से कुछ नवीन रचने के आह्वान से संग्रह का प्रारंभ होता है। शब्द के नाद रूप से परिचित कवयित्री जानती है शब्द भी एक तरह का भोजन है, किस समय कौन-सा शब्द परोसना है, यह आ जाए तो दुनिया में उससे बढ़िया रसोइयाँ कोई नहीं अतः माँ शारदे से उनकी विनती है -- ''मंत्र हो जाएँ शब्द मेरे/भाव हो जाएँ घनेरे/बिंब चमकें बन चितेरे/वेदना की अनकही टीस/मेरे शब्दों में उतार दे''।(11)

कवयित्री शृंगार एवं भक्ति के नाम पर की जा रही शब्द क्रीड़ा को नकार कविता को प्रकाश के वितान की एक ऐसी झीनी-सी बुनावट बनाना चाहती है जो अंकुरों को ओढ़ने, वादियों को जोड़ने, जिजीविषा से सराबोर, सभ्यता एवं संस्कृति की पहचान बनने वाली तलहटी के संग-संग विपदाग्रस्त मानव की उद्धारक, इंडिया और भारत के भेद को समाप्त कर, ''हमें क्या? की मानसिकता से ग्रस्त 'चूहा संवाद' को चुनौती देने वाली हो'' अब कविता को बनना होगा/सचेत ज़िम्मेदार/करना होगा सबको सतर्क/होना होगा कविता को खबरदार।(19) अतः वे पाश्चात्य संस्कृति, वैश्वीकरण की जहरीली सौगात, वैज्ञानिक प्रगति से संकुचित होती मानसिकता एवं दिखावटी प्रवृति का चित्रण अंतरिक्ष व आस्था'' शीर्ष



में करती है। धर्म व जाति पर/आदमी को लड़ा दीजिए/वह लड़ेगा/मारेगा, मरेगा/कोई आदमी मर रहा हो/उसकी सहायता?/नहीं/ वह कभी नहीं करेगा/''(25) यहाँ कवयित्री मानवीय सदाशयता अपनाने का मौन आह्वान करती है। क्योंकि समस्त समस्याओं की जड़ यही मानसिकता है।

प्रकृति मनुष्य को जीवन के समस्त साधन उपलब्ध करवाती है पर स्वार्थ में अन्धे संवेदनाहीन मानव ने उसका दोहन ही नहीं किया, वरन् उसे प्रदूषित कर स्वयं के जीवन के लिए संकट खड़ा कर लिया है। 'यमुना एक मरनासन्न नदी' के माध्यम से जल प्रदूषण की समस्या को उठाते हुए प्रदूषण रूपी कालिया नाग को नाथने का कृष्ण से आह्वान करती है। यहाँ वे स्वच्छता के नाम प्राप्त सहायता राशि को चट कर जाने वाले भ्रष्टाचारियों का भी पर्दाफाश करने से भी नहीं चूकती -- ''नथना होगा कालिया नाग/बुझानी होगी भ्रष्टाचार की आग/सफाई के नाम पर/चट कर जाते सारे प्रयास।''(29) यही स्थिति वायु प्रदूषण की है। प्रकृति किसी को माफ़ नहीं करती, वह आज क्रोधोन्मत हो फुफ्कार रही है, कहीं ज्वालामुखी बन कर तो कहीं प्रभंजन बनकर प्रलय ला रही है। कवयित्री प्रदूषण मुक्ति का उपाय सुझाते हुए हरितिमा संवर्धन की सार्थकता को 'पेड़' शीर्ष में वाणी देते हुए मानव को सदाशय बनने की सीख देती है।

प्रदूषण के और भी रूप हैं जिसके ज़िम्मेदार हमारी प्रगति व पिछड़ापन दोनों समान रूप से है। दिल्ली महानगर के स्टेशन के माध्यम से कवयित्री की आँख देश की धरती पर रिसते फफोले स्वरूप स्लम एरिया को भी देखती है जिनकी ज़िंदगी में स्वतंत्रता के सत्तर वर्ष बाद भी कोई बदलाव नहीं है, कोई शासक उनके सुधार के विषय में नहीं सोचता। एक ओर प्रगति के नाम पर ''तूफ़ानी गति से दौड़ती शताब्दी मेल है तो दूसरी ओर सुरसा-सी फैली ये गन्दी बस्तियाँ, पटरी पर उनके मल त्याग का वीभत्स दृश्य, सर्वशक्तिमान की सर्वोत्तम रचना की गरिमा और सम्मान पर प्रश्न चिह्न लगाता, भारत मेरा महान् की खिल्ली उड़ाता प्रतीत होता है -- ''छू रहा बुलंदियाँ इंडिया/भारत के हिस्से में/हमेशा क्यों आते ग़म?''(107)

लाशों का अंबार, जख़्मों का सैलाब, हृदयों की चीरती चीख पुकार, धुएँ के मंज़र, धरती की छाती में घोपे जाते खंजर, विरान होती पहाड़ियाँ -- ये है आतंकवाद का भयानक चेहरा, तबाही ही तबाही, -- कवयित्री विश्व को इस आंतकवाद से मुक्त करवाना चाहती है। ''धुआँ ही धुआँ'' में दिशाभम्रित कवि हृदय की तड़प अभिव्यक्त हुई है -- ''क्यों रास्ता नज़र नहीं आता/हैरान है लोग, हैरान है देश/अब धुएँ की लकीरों की किरकिरी होनी चाहिए/अब देश की तकदीर बदलनी चाहिए/उठो, चले, अब/कोई नई तदबीर/निकलनी चाहिए/धुआँ नहीं/रोशनी ही फैलनी चाहिए।''(109)

वस्तुतः आज देश में क़ानून की सरेआम हत्या हो रही है। हम सब देखते हैं परंतु

सरे आम रामलाल की हत्या करने वाले को रोकते नहीं परंतु कवयित्री के मन के आकाश पर उड़ने वाली चिंतन रूपी चिड़िया बम बन कर जूझती है। इतिहास साक्षी है परिवर्तन में व्यक्तिगत प्रयास अधिक प्रभावी तभी होते हैं जब अभिव्यक्ति प्रभावी, तेज व मुखर हो। कवयित्री अपनी इसी प्रभावी अभिव्यक्ति से भीख माँगते नन्हे हाथ, झुर्रियों से लथपथ आश्रय हीन वृद्ध, कोठों की क़ैद में मसली जा रहा कच्ची कलियों के बचपन, पंचतारा होटलों में ऊँची कीमतों में बिकते सजे-धजे बदन, घर के सुरक्षित घेरे में होता उत्पीड़न, जूठी पत्तलों पर कुत्तों के साथ छीना-छपटी करते भूखे बच्चों के हाथ तो दूसरी तरफ़ राजसी वैभव संपन्न विवाह समारोह इत्यादि को बेबाक शब्दों में वाणी देती है। ''क्या ऐसा समाज बहरा नहीं कहलाता?''(63)

कवयित्री ने क़ानून की रक्षक पुलिस की अराजकता को भी ''आम आदमी का नार्को टेस्ट'' शीर्ष में वाणी देती हैं वहीं आरक्षण के नाम पर अयोग्य को रोज़गार प्राप्ति परंतु योग्य जन की बेरोज़गारी से उत्पन्न टीस 'गाड़ी' शीर्ष में तीखे व्यंग्य के रूप में उभर कर आई हैं -- ''किसी को हर बार/मिल जाता है मौका/किसी को कभी नहीं/जबकि काबिलीयत में/वह आसमान में सितारों-सा/चमकता है/पर सितारा हमेशा उसका/गर्दिश में होता है... चलती का नाम गाड़ी/जो भागी चली जाती है/बिना पहिए, बिना पटरी/सुपरफास्ट कहलाती है।''(37)

मिट्टी को देखकर हुलसने वाला धरती पुत्र आज क़र्ज़ में डूबा आत्महत्या करने को विवश है। सरकारी सहायता उस तक पहुँचती ही नहीं, मात्र मृग तृष्णा सिद्ध होती है। अतः असन्तोष जताते हुए कहती हैं -- नहीं करनी पड़ेगी/किसान को आत्महत्याएँ/खींच लेगी उसे अपनी ओर/...या केवल देती रहेगी/भरी दुपहरी में/मात्र जल का आभास।''(55)

स्त्री विमर्श से जुड़े सभी प्रसंगों को वाणी देता है यह काव्य-संग्रह। 'नारी मुक्ति' शीर्षक में स्त्री के पराभव के लिए उत्तरदायी कारणों -- उसके अंदर-बाहर जड़ जमाए पितृसत्ता के पारंपरिक संस्कारगत जड़ताओं का तटस्थ अनुशीलक की तरह चित्रण करती है वहीं 'बेटियाँ' शीर्ष में शिक्षित हो अपनी योग्यता का परचम लहराने वाली बेटियों का गान करती है -- ''रचने लगी है इतिहास, देश के हर कोने से/आने लगी है आवाज़/बेटियाँ हमारा सब कुछ है/प्यार है, दुलार है/नींव का आधार है/मान है, सम्मान है/तुलना अगर करनी हो/तो भगवान-सी भगवान् है।''(86) पर प्रत्येक क्षेत्र में नारी के साथ होने वाले अत्याचार, नित्य घटने वाली बलात्कार की घटनाएँ उसके वजूद पर प्रश्न चिह्न लगाती है वहीं पुरुष की घिनौनी मानसिकता पर घृणा पैदा करती है। अतः आक्रोश व मानवीयता की समन्वित मानसिकता को वाणी देते हुए ''दामिनी अभी ज़िंदा है'' में दामिनी के जन-जन में, राष्ट्र की धड़कन में ज़िंदा होने की बात कहती है। मनोवैज्ञानिक धरातल पर बदलाव की बात करती है। यहाँ तक कि क्रांति के माध्यम से संपूर्ण परिवर्तन की बात करने में भी नहीं हिचकिचाती -- देश की बेटियों की/करो संभाल/रहना चाहते हो ज़िंदा/नहीं तो प्रलय



का/एक ऐसा झौका आएगा/नहीं बचेगा कुछ भी/न यह राज/न यह समाज/न यह सभ्यता/न यह सृष्टि/न यह इंसान/न भगवान।(25) वह नारी को भी बाज़ारवादी संस्कृति से दूर हट आत्म सुरक्षा हेतु संकल्पित होने, अंतर्मन संवारने को कहती है, उसे देह दर्शन के स्थान पर संतान को संवार देश की आन-बान-शान बनने का आह्वान करती है। परिणाम 21वीं सदी की स्त्री अर्गला खोल सूरज को अपनी बिंदिया बनाने के आत्मविश्वास से परिपूर्ण ''धरती है तो अस्तित्व है गगन का'' का उद्घोष कर नर-नारी के समान अधिकारों के साथ-साथ समाज के बदलाव की भी बात करती हैं।

वस्तुतः वह समतामय समाज की, अपने उस जन्म की कामना करती है जब महाशक्तिमान का ऐसा शक्ति पुँज कहला सके जिसमें एकलव्य से धनुविद्या सिखाने की दक्षिणा नहीं मांगी जाए, उसे अर्जुन बनने का सौभाग्य और सब को हस्तिनापुर का हक़ मिले। इस हेतु वे मैं से हम की यात्रा तय कर द्वैष से दूर आत्मा में सम बनने को तत्पर है परंतु ''अब तो सब निशाने पर है/धर्म, सभ्यता, संस्कृति/निरीह मानव के प्राण/आकाश का अस्तित्त्व/पृथ्वी का हर आयाम।''(73) कवयित्री यहाँ बौद्धिक सहानुभूति दिखा अपने कर्त्तव्य की इति नहीं करना चाहती। समस्या के वास्तविकता निदान की आकांक्षी समस्या की जड़ तक पहुँचती है। तब उन्हें पाष्चात्य संस्कृति के नाम पर अपने उच्चादर्शों को खोने का एहसास होता है वे इसे हीरों के बदले ढीकरों का व्यापार, अमृत कलश की जगह जहर के चषक का पान बताती है। वे निराश नहीं है आशा व आत्मविश्वास भरा उनका कथन है -- ''अँधेरा भी रात भर/करता है इबारत/सहर होने की।/घास पर जमी शबनम/देवी गवाही रात भर/उसके रोने की।(66) अतः वह आँधी, तूफाँ, वर्षा या बाढ़ आने पर भी काटों की नोक पर फूल खिलाने वाली धरा सम बनने का मन को उद्बोधन देती है। खालिस ख़ुशी की उपमा कन्या जन्म से देती है -''कई बेटों के बाद/जैसी जन्मी हो एक बेटी/या वर्षों सूखे के बाद/भरपूर हुई हो खेती।(115) मृत्यु से पूर्व देश को शिखर पर पहुँचते हुए, चाँद पर उतरते, कूड़ा बीनते रत्नों को टाटा, अम्बानी बनते स्वच्छ पर्यावरण, आतंकवाद मुक्त विश्व की कामना करती है। सभी से समाधान पूछती है -- ''कैसे भुजाओं को भटकने से बचाए/कैसे विचारों को अमृत पिलाएँ/आओ सोचें विचारे/कैसे पर्यावरण को शुद्ध बनाएँ।''(121) वे जानती है ऊँगली पर गोवर्धन उठाने से कुछ नहीं होगा क्योंकि अगर लोग सिर्फ़ समझाने से समझते तो बाँसुरी वाला कभी महाभारत नहीं होने देता। अतः वह लेखनी में प्यार वाली खींच पैदा कर सबके दर्द से रूबरू करवाकर मनुष्यता स्थापित करना चाहती है। वे यह भी जानती है कि इतिहास ने नारी की शहादत को कभी वाणी नहीं दी फिर भी संपूर्ण बदलाव की आकांक्षी प्रलयोल्का बन बरस जाना चाहती है -- ''इनसानी माँस भक्षियों को/चौराहे पर कर के खड़ा/गोली से उड़ाना चाहती हूँ/अपने इन हाथों में/बंदूक उठाना चाहती हूँ।''(103)

काले पानी के नाम से हज़ारों देश भक्तों की बलिदान के साक्षी अंडमान द्वीप समूह

को कवयित्री श्रद्धापूर्ण भावांजलि अर्पित करती हैं वहीं सुहाना सफ़र कह काव्यानुवाद की महिमा का गान भी करती है। तनावों से तपते मानस में उन्हें माँ की स्मृति अमलतास की छाया-सी शीतलता देकर तरोताज़ा बनाती है।

कवयित्री दर्शन की बात करते हुए प्रकृति को जीवंत बनाने वाली शक्ति का संधान करते हुए स्व को पहचानने की बात करती है -- क्या हुआ जाना जो सब को/क्या हुआ जाना न रब को/जाना नहीं साँसों के ढब को/अब तो शर संधान कर लो/अपने से पहचान कर लो।(65)

वस्तुतः खड़ी बोली हिंदी में रचित ये कविताएँ एक आईना थामे हैं जो सधे हुए शब्दों में सादगी के संग यथार्थ की कड़वी सच्चाई से साक्षात्कार करवाकर संवेदनात्मक धरातल पर सकारात्मक चिंतन को बाध्य करते हुए व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन हेतु अर्जुन और भीम के गांडीव व गदा थामने का जन-मन से आह्वान करने का सार्थक प्रयास है। ❑

**डॉ. साधना गुप्ता :** सहायक आचार्य, राजस्थान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़
द्वारा : के.एल. गुप्ता 'एडवोकेट' मंगलपुरा टेक, झालावाड़ (राजस्थान)
मो. नं. : 9530350325
Email id : sadhanagupta0306.sg@gmail.com
For 98 Issue
Dr. Sadhana Gupta <sadhanagupta0306.sg@gmail.com>



Smt. Niti Nipuna Saxena

# Need for a Seclar : Adoption Law

In the early days, the practice of adoption was shrouded in secrecy, which was restricted in the traditional family. The tradition at that time was that, childless couples adopt a child with a view to ensure the continuity of tradition and to avoid alienation of property. Adoption has always been considered a wonderful opportunity to provide the child with home and parents a child. It offers an excellent alternative to institutional care for an abandoned, destitute or neglected child in an atmosphere of happiness, love and understanding which only a family can provide.

Adoption that begins in the early 70s had changed the social attitude and concept of adoption. Thereby significant changes in the legal, social and practice levels of adoption program with systematization of the procedure to the best interest of the child, adoptive parents and the birth parents had taken place.

Adoption is the transplantation of son from the family in which he is born ,to another family where is he is given by the natural parents by way e of gift . The adopted son is then taken as being born in the new family and acquires rights, duties and status there only, and his tie with the old Family comes to an end, the concept of adoption is concerned with Hindus only. Concept of adoption can be traced even from Vedic time. The ancient texts Dattaka mimansa, Dattak Chandrika, Manu, Yagnavalkya, Baudhayana, Kautilya etc well refer to this concept.

**INDIAN LAWS AND ADOPTION**

**The Hindu Adoption and Maintenance act, 1956** provides for adoption of Hindu children by the adoptive parents belonging to Hinduism. After the enactment of The Hindu Adoption and Maintenance Act 1956, the old concept of adoption has undergone a radical change. The performance of the Datta homam attaching religious sanctity is left out. A girl can now

be adopted. Even an unmarried has been given a right to adopt. One of features of this Act is that no Hindu person can adopt a son or daughter, if they already have a child of that sex. Often the intentions behind the law are good, but the methods adopted fall short. The HAMA provides that there should be an age difference of 21 years between the adoptive parents and the adopted child whenever they are of opposite sex. This is intended to prevent sexual abuse.

**Section 7 of the Hindu Adoption and Maintenance Act**, prescribes the general capacity of a Hindu male take a son or daughter in adoption if he is of sound mind and not minor. Similarly, Section 8 of the Act empowers a female Hindu to take his son or daughter in adoption subject to the fulfilment of conditions prescribed in the Act. Section 10 speaks about the persons who may be adopted . This section provides that a child male or female is capable of being taken in adoption if he or she is a Hindu and not already been adopted

From the above provisions, it is clear that a son or daughter is having equal opportunity for the purpose of adoption. It is also pertinent to mention that both male and female are entitled to adopted on a son or a daughter under the provisions of law

Personal laws of Muslims, Christians, Parsis and Jews do not recognise complete adoption. As non Hindus do not have an enabling law to adopt a child legally, the people belonging to these religions who are desirous of adopting a child can only take the child in guardianship under the provisions of The Guardians and Wards Act, 1890. The statute does not deal with adoption as such but mainly with guardianship. The process makes the child a ward, not an adopted child. Under this law, when children turns 21 years of age , they no longer remain wards and assume individual identities . They do not have an automatic right of inheritance. Adoptive parents have to leave whatever they wish to bequeath to their children through a will, which can be contested by law any by "blood" relative.

**The Hindu Minority and Guardianship Act, 1956** has codified laws of Hindus relating to minority and guardianship. As in the case of uncodified law It has upheld the superior right of father. It Lays down that a child is a minor till the age of 18 years. Natural guardian for both boys and unmarried girls is first the father and then the mother .Prior right of mother is recognised only for the custody of children below[5] . In case of illegitimate children, the mother has a better claim than the putative father. The Act makes no distinction between the person of the minor and his property and therefore guardianship implies control over both. The Act directs that in deciding the question of guardianship, court must take the welfare of child as the paramount consideration. Section 6 of the said Act provides about the natural guardians of a Hindu minor. Section 7 of the very Act speaks about the natural guardianship of adopted son.

The aforesaid enactment remain silent about the orphan, abandoned and surrendered children. There was no codified legislation dealing with the adoption of the children of these categories. Considering all the aspects mentioned above laudable attempt was undertaken by the Legislature by the stipulation, which have been made in chapter 4 of **the Juvenile justice (Care and Protection of Children) Act 2000**. It is pertinent to mention here that there arises confusion as to the interpretation as well as concept of adoption as because the expression "adoption" had not been defined at all in the enactments like HAMA or GAWA . More over, the legal status of the adopted child has not been declared to be equal to that of a biological legitimate child. Though at the initial stage, the Juvenile justice (Care and Protection of Children) Act 2000 did not contain these factors, these are introduced in Juvenile justice (Care and Protection of Children) Amendment Act 2006 . There is hardly any awareness about a 2006 amendment to the Juvenile Justice Act which allows non Hindus to adopt. The concept of adoption has been well defined in section 2(aa) of the said Act .Accordingly to the said Act and its amendment provisions are made for adoption of children who are orphaned ,abandoned or surrendered, it also.

allows adults, irrespective of their marital status and irrespective of the number of living biological children they have, from any community to adopt and doesn't restrict it to Hindus only. This enactment shows that the Legislature has accepted the concept of secular adoption where by without any reference to the community or religious persuasions of the parents or the child concerned , a right appears to have been granted to all citizens to adopt and all children to be adopted.

**L.K. Pandey vs. Union of India A.I.R 1984 S.C. 469** the Government of India has issued several guidelines and subsequently converted the Central Adoption Resources Agency (CARA) into an autonomous body and also ratified Hague convention of 1993 and the United Nation Declaration of Rights of the Child adopted by the General Assembly of the United Nations in 1989 on inter country adoption. Later, Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act 2000 was passed for children in need of care and protection.

In L.K. Pandey versus Union of India case, our apex court held that since there is no statutory enactment in our country providing for adoption of child by foreign parents or laying down the procedure which must be followed in such a case, resort is had to the provisions of the Guardians and Wards Act, 1890 for the purpose facilitating such adoption. These guidelines are amended and updated from time to time keeping in the mind

the welfare of such child. While CARA is engaged in clearing inter country adoption of Indian children, its principal aim is to promote in country adoption. In fact, CARA ensures that no Indian child is given for inter country adoption without him or her having been considered by Indian families residing in India. CARA also provides financial assistance to various NGOs and government run homes to promote equality child care to such children and place them in domestic adoption.

The enactment of the Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2000 and it's subsequent amendment in 2006 is definitely a significant efforts of the Legislature towards recognition of adoption of orphan, abandoned and surrendered children by people irrespective of their religious status. It can't be denied that it is a secular legislation only under which any person can adopt a child being orphan ,abandoned and surrendered child irrespective of his or her religion. It is more children-oriented unlike other legislations.

But it may be mentioned at the same time that some more factors need to be considered specifically by the Legislature. Act stipulates adoption by any person irrespective of his or her marital status , but it does not specify whether the consent of the other spouse is required to be obtained by adopting spouse in case adoption by a married couple. This might create misconceptions among the Hindus as in Hindu law (HAMA) taking consent of the wife by her husband is an essential criteria for adoption. Secondly, the Act is silent about the criteria for age difference between the adoptee and adoptive parents in case they are of opposite sex. This is an essential factor for adoption, which should be considered seriously for the purpose of preventing child abuse and trafficking. All these facts are obviously applicable to all religious and therefore, it is necessary to specify them for the interest of the children.

Getting children into the adoption stream is one of the key factors that influence the process of adoption in India. Only relinquished children come directly under the care and protection of the agency. The agency receives its inmates, abandoned or committed by the concerned courts in addition to those who are directed by the child welfare committee on Juvenile Justice Board.

Among the most important changes that are made is dropping the inter country adoption prohibition clause. Before the amendment, the practice for adoption is that foreigners are given the choice of adopting a child only after he or she has been rejected by Indian parents. The amendment entails that foreign parents will be treated on par with Indians. This clause will cut down red tapism and hasten the adoption process.



**Criticism**

In my opinion, there are various drawbacks in the existing law on Adoption in India . Some of drawbacks are discussed below :--

1. Hindu Minority and Guardianship Act 1956 Section 7 - simply says that on adoption, the natural guardianship of the adopted son passes on from its natural parents to the adoptive father and after him to the adoptive mother. This section in its nature and contents has two inherent defects --

1. it fails to take notice of the cases of adoptive daughters, and
2. it also fails to consider the cases of adoption by women having no husband

Consequently, this section serves no purpose at all.

2. Hindu Minority and Guardianship Act section 6 is exhaustive in its nature, the natural guardian of Hindu minor boy and girl, both legitimate and illegitimate. It also takes into account the case of married (minor) girls. Though it is silent about the adopted son and daughter, but it can be presumed without hesitation that it applies to adopted sons and adopted daughter too.

Section 7 is confined to the natural guardianship of adopted son only. The reason of non-consideration of the cases of adopted daughters seems that the Hindu Adoption and Maintenance Act, which enabled Hindu men and women, to adopt daughter was in making when the Hindu Minority and Guardianship Act was passed. If the legislature would have been vigilant enough this provision could be included in this Act or the coverage of section 6 could be extended to include clearly the cases of adopted children.

3. The Hindu Adoption and Maintenance Act is parent-oriented with religious colour. Under this Act a man without a child can adopt either a stranger or a near agnate, such as brother's son. But in practice, strangers are rarely adopted, the childless parents choose to adopt a near agnate or his relatives son.
4. Hindu Law, illegitimate child cannot be adopted. The child must be a Hindu. However, the word Hindu has been widely defined and includes Jains, Buddhists and Sikhs or any one who must be presumed to be Hindu within the definition of Hindu in section 2 of Hindu Adoption and Maintenance act.

Illegitimacy is a major social problem in our society as millions of our children are illegitimate. Adoption is in practice a common solution to a case of illegitimacy.

5. Hindu law adoption is that Hindu spinster, a widow or a divorcee can

adopt a child for herself , but a wife cannot adopt a child even with the consent of her husband.

According to Section 8 and proviso to Section 7 with the explanation mention about the capacity of male or female Hindu to take in adoption. Male Hindu has a capacity to take a son or daughter in adoption.Obtaining the consent of the wife or if there are more than one living wife, the consent of all of them is necessary for adoption, unless they or any of them suffered any of the enumerated infirmities rendering such consent unnecessary. The conscious and positive as well as deliberate omission to provide for a female. Hindu seeking or obtaining any such consent from a co or junior window is a definite pointer to indicate that the legislative intent and determination was not to impose any such clog on the power specifically conferred upon the female Hindu.

To subject the exercise of power by the senior widow to adopt, conditioned upon the consent of junior widow, where a Hindu male, died leaving behind two widows with no progeny of his own, would render the exercise of power more cumbersome and paradoxical, leaving at times, such exercise of power to adopt only next to impossibility.

The object underlying section 7 of Hindu Adoption and Maintenance Act, if the requisite consent of the wife is obtained , the wife is regarded as the adoptive mother because the adoption so made by a male Hindu is not only himself but by his wife as well. In case of a Hindu female, there is no such provision for her taking and adoption during the husband's lifetime even if he consents. In other words, in the case of an adoption by Hindu female, there is no question of her making an Adoption in any contingency in which the adoption could be held not only for herself but to her husband as well.

6. It is also important to notice that all deeming provisions relating to the affiliation in section 14 of the Hindu Adoption and Maintenance Act are only in relation to living person and not to person who were dead at the time of adoption. Section 14 (1) refers only to the living wife who should be deemed to be adoptive mother and it does not include a wife who was dead at the time of adoption. This shows that the deceased wife is not to be regarded as a adoptive mother of the boy adopted. If in the case of the deceased, wife there is no such affiliation the position is a fortiori in the case of deceased father. Reading Section 8 and 14 of the said Act, together the widow has no capacity to make a adoption to the deceased husband and such an adoption will not therefore be in accordance with the provisions contained in Chapter 2 of the said Act within the meaning of Section 5.
7. The Juvenile Justice Act, 2000 excludes from its purview those children who have been voluntarily relinquished by their biological parents. There may be conflict between the said Act and the existing legislation. The multiplicity of the laws, each with their own set of operational rules can cause chaos in field.

A comprehensive law in adoption which is ideal solution seems so far away, so this is better than nothing because of the lack of an Act, so many parents who already have one adopted child and who are excellent candidate to adopt another child of the same sex , cannot do so. (HAMA does not allow Hindu parents to adopt more than one child of the same sex) most of these children then go in for inter country adoption, often into families where there are several children. Most important feature of the said Act, 2000, and its amendment 2006,is that it hides and adoption law in it with no reflection on how it is to be implemented or it's repercussions .

8. The section on Adoption in the said Act has been written imprecisely and with little attention to detail. The creation of parallel new structure for adoption headed by Juvenile Justice Boards in the various districts under magistrates with special knowledge and training in Child Psychology, will replace the present system of family courts, which have worked reasonably well. The said Act will require a substantial amount of funds and it may not be always possible to find magistrates with the desired background in child welfare, resulting in posts remaining vacant. This will delay in already delay prone system.
9. Among the most important changes that are made is dropping the inter country adoption prohibition Clause. Before the amendment the practice for adoption is that foreigners are given the choice of adopting a child only after he or she has been rejected by Indian parents. The amendment entails that foreign parents will be treated on par with Indians. This clause will cut down red-tapism and hasten the adoption process.

Amending the Act was not enough; there has to be more clarity about procedure and information on how the laws should be applied. There are other grimmers facts about adoption like no one, not even foreigners, want to adopt mentally challenged children. Activists emphasize that there is no clarity on the provision for adoption in the Juvenile Justice (Care and Protection) Act.

10. There seems to be no rule on infrastructure in place nor is there clarity on related issues, like if the law will apply to Muslims. As it stands, the amendment to the J.J. Act defines adoption. Actually, this Act would apply to all Indians. It is not clear how this law would override the provisions of other personal laws. The Muslim personal law, for instance does not permitted adoption. The government can't try and plug loopholes in Act by amending another. The Adoption Law in India

needs in amendment to bring in greater uniformity for all religions, but is needs to be done more systematically and not just by amending the J.J. Act.

**Suggestions**

Some suggestions have been given below which may be implemented as the legislative and administrative levels, which would make adoption more effective in India.

1. Section 7 needs to be amended. The cases of natural guardianship of adopted sons and daughters adopted by a Hindu male or by Hindu female (having no husband) can be covered by inserting two new clauses, just after clause (a) of section 6 of Hindu Minority and Guardianship Act, namely --

In the case of an adopted son or daughter by a Hindu male, the adoptive father and after him, the adoptive mother.

In the case of an adopted son or daughter by a Hindu female (having no husband) -the adoptive mother.

2. The adoption charges and donations must be fixed. The prescribed fees for an inter country placement is obviously higher than an internal one. Many Indian Agencies apparently have tie up with Agencies abroad and collect huge sums as gift and donations that go unaccounted. Hence, adoption charges must be prescribed in rules and appropriate authorities must ensure that malpractices are not taking place.
3. Usually the child study report is prepared once the child is free for adoption. The CSR is obviously prepared by the social workers of the agency who need not be an experienced person. It is to be submitted that the CSR must be prepared and signed by a senior staff of the organisation that should be held personally responsible for the report.
4. Hindu Adoption and Maintenance Act, adoption is irrevocable and confers full status of a biological child, including the right to inherit. Parents can not adopt a child of a particular sex, if they already have a biological or adopted child of the same sex. According to Section 5(1) of HAMA, if adoption by a Hindu is not in accordance with its provisions, the same shall be treated as void. For Hindus, Juvenile Justice Act cannot be of any use in matter of adoption.
5. With the passing of Hindu Succession Act 1956 which treats son and daughters equally in the matter of the succession. So the law of adoption among the Hindus should be simplified. There is no longer any justification for allowing husband to prevent his wife from taking a child in adoption after his death.



Now after passing of said Act the adoption made by a Hindu widow will be in her own right. No person need be divested of any property which has vested in him by reason only of the fact that subsequent to such vesting an adoption has been made. This rule of divesting has been the case of many a ruinous litigation.

6. In India, there is no secular law of adoption covering all the people. As a result, Muslims, Christians and Parsis have no adoption laws of their own and they have no adoption rights but only a guardianship rights under the Guardians and Wards Act 1890 where the adopted child does not get inheritance and other rights.

**Conclusion**

The Law Commission in 153rd report recommended that uniform law be enacted to regulate adoption, but nothing seems to have happened in this regard. **Article 44** of the Indian Constitution declares that the state shall endeavour to secure for the citizens a Uniform Civil Code throughout the territory of India. Over the years several attempts were made to formulate a General secular law on adoption. The attempt of Parliament in the direction did not bear fruit, all these went in vain on account of number of reasons. Being a signatory to United Nations convention on right of child and Hague convention of inter country adoption, India is obliged to enact the appropriate legislation on the adoption, applicable to all societies and communities alike. So a uniform adoption law in India should be introduced, that definitely has to be appreciated.

❑

**Smt. Niti Nipuna Saxena :** Assistant Professor, Shri J.L.N.Law College Mandsaur (M.P.)

सन्तोष खन्ना

# दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन संबंधी उच्चतम न्यायालय का फैसला

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 को जो कि दांपत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापन के बारे में है, उच्चतम न्यायालय में मार्च, 2019 में चुनौती दी गई है कि यह संविधान के विरुद्ध है। इस आई चुनौती पर फ़ैसला करने के लिए उच्चतम न्यायालय को अपने एक फ़ैसले को अवश्य देखना चाहिए। यह फ़ैसला सुमन सिंह बनाम संजय सिंह के वाद का, जिसे पढ़ कर पता लगता है कि कैसे छोटी-छोटी बातों पर आज समाज में दंपत्ति विवाह तोड़ने पर उतारू हो जाते हैं। इस फ़ैसले को यहाँ पूरा दिया जा रहा है जिसे पढ़ कर उच्चतम न्यायालय की विवाह संस्था के बारे में सोच को समझा जा सकता है।

**सुमन सिंह बनाम संजय सिंह (सिविल अपील संख्या 2014/7114-7115)**

**न्यायमूर्ति अभय मनोहर सपरे, न्यायाधीश :** यह अपील याची (पत्नी) ने दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली के 23.05.2013 के आदेश के विरुद्ध दायर की है। इसमें दिल्ली उच्च न्यायालय ने याची की याचिका को ख़ारिज कर दिया था और प्रमुख न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, रोहिणी के 14.12.2010 के निर्णय की पुष्टि की थी। इस निर्णय में परिवार न्यायालय ने पति के पक्ष में विवाह भंग की डिक्री जारी की थी और पत्नी द्वारा दांपत्य अधिकारों के प्रतिस्थापन के लिए फाइल की गई याचिका को ख़ारिज़ कर दिया था।

2. इस मामले के संबंध में तथ्य इस प्रकार थे --

3. इस मामले में याची और प्रतिपक्षी के बीच हिंदू रीति के अनुसार दिल्ली में 26.02.1999 को विवाह हुआ था। पति राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के एक कार्यालय में केयरटेकर के रूप में कार्य कर रहा था और पत्नी एक गृहणी थी। इस परिवार में एक कन्या का जन्म 15.06.2002 और दूसरी कन्या का जन्म 10.02.2006 को हुआ था। दोनों याची के साथ रह रही हैं।

4. पति ने 1.07.2010 को अपनी पत्नी के विरुद्ध हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अंतर्गत विवाह भंग की याचिका दिल्ली के रोहिणी न्यायालय में दायर की और कहा कि उसे 'क्रूरता' के आधार पर तलाक़ चाहिए।

5. पति ने पत्नी के विरुद्ध क्रूरता की नौ घटनाएँ बताई हैं और उनके आधार पर विवाह विच्छेद के लिए प्रार्थना की।

6. क्रूरता की पहली घटना के बारे में पति ने पत्नी के बर्ताव के आधार पर क्रूरता का आरोप लगाते हुए कहा कि 27.02.1999 को पत्नी अपनी नाइट ड्रेस में बेड रूम से बाहर आ गई और उसने उस समय घर में उपस्थित रिश्तेदारों का आदर सम्मान नहीं किया और न ही उसने घर के बड़े बूढ़ों को सम्मान दिया।

7. दूसरी बार नए वर्ष के अवसर पर पति ने नया वर्ष पर पत्नी के परिवार के साथ उसके माँ-बाप के घर मनाने को सहमति दे दी। जब वह अपने ससुराल पहुँचा तो उसने पत्नी को कई बार बुला भेजा परंतु वह अपने माँ-बाप रिश्तेदारों के साथ व्यस्त रही, उसे ड्राइंग रूम में बैठा रहने दिया गया। रात के भोजन के समय भी पत्नी के पारिवारिक सदस्यों ने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया।

8. चौथी बात यह थी कि पत्नी ने पति के परिवार में होने वाले महत्त्वपूर्ण समारोहों में भाग लेने की कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। इस संबंध में समय और तारीख़ का कोई ब्यौरा नहीं दिया गया है।

9. चौथा आरोप यह है कि पत्नी ने पति के परिवार वालों के साथ अशोभनीय व्यवहार किया। इस संबंध में भी कोई ब्यौरा नहीं दिया गया।

10. पाँचवाँ आधार यह बताया गया कि जुलाई, 1999 में पत्नी ने इस बात पर ज़ोर दिया कि उन्हें पति के परिवार से अलग रहना चाहिए।

11. पत्नी की रुचि घर के कामकाज करने या खाना पकाने में नहीं थी।

12. क्रूरता का छठा आधार दिया गया कि वर्ष 2000 की दीपावली के अवसर पर पत्नी ने पति के परिवार वालों के साथ ग़लत व्यवहार किया।

13. सातवीं घटना जब हुई जब पत्नी ने 15.04.2001 को घर आए मित्रों से दुर्व्यवहार किया।

14. क्ररता का नौवाँ वाकया तब हुआ जब वर्ष 2010 में पत्नी पति के कार्यालय में आई और उसने सबके सामने पति को भला-बुरा कहा।

15. क्रूरता का दसवाँ आधार भी पत्नी का पति के परिवार के सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार करना है।

16. पत्नी ने अपने लिखित उत्तर में इन सब आरोपों से इनकार किया है और साथ

ही उसने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अंतर्गत दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की माँग करते हुए कहा है कि पति ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण से उससे साहचर्य को हटा लिया है।

17. इस मामले में ज़िला न्यायालय ने निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार किया, ''क्या पत्नी विवाह के बाद पति के साथ क्रूरता की दोषी है? क्या पति को विवाह भंग की डिक्री का अधिकार है? क्या इस मामले में पत्नी दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की अधिकारिणी है?

18. पक्षकारों ने अपने-अपने साक्ष्य दिए। परिवार न्यायालय ने निर्णय दिया कि पत्नी हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(1-ए) के अंतर्गत मानसिक क्रूरता की दोषी है और इसलिए विवाह भंग की डिक्री पारित की जाती है और पत्नी की दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन संबंधी याचिका ख़ारिज की जाती है।

19. इसलिए पत्नी ने यह याचिकाएँ दायर की हैं।

20. हमने इस वाद में दोनों पक्षकारों के अधिवक्ताओं की दलीलें सुनी हैं।

21. पक्षकारों की दलीलें सुनने और मामले की अभिलेखों को पढ़ने के बाद हम पत्नी की याचिका स्वीकार करते हैं और पति द्वारा फाइल की गई विवाह-विच्छेद संबंधी याचिका को ख़ारिज करते हैं और अपीलकर्ता द्वारा फाइल की गई दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की अपील को स्वीकार करते हैं।

22. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(1-ए) धारा के अंतर्गत 'क्रूरता' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है। किंतु इस शब्द पर इस न्यायालय ने कई वादों में विचार किया है। 'मानसिक क्रूरता' के बारे में इस न्यायालय की (तीन-सदस्यीय पीठ ने **समीर घोष बनाम जया घोष** में (2007) 7 एस.सी.सी. 511) स्पष्टतः बताया है कि इसका अर्थ क्या है। इस मामले में न्यायमूर्ति दलबीर भंडारी ने विचार व्यक्त किया था कि क्रूरता के लिए कोई एक मानक स्तर निर्धारित नहीं किया जा सकता। फिर भी ऐसे मानवीय व्यवहार के उदाहरण दिए जा सकते हैं जिसे 'मानसिक क्रूरता' माना जा सकता है।

24. इस मामले में 16 प्रकार के उदाहरण दिए गए जिनके अंतर्गत यह विचार किया जा सकता है कि जिन तथ्यों का आरोप है क्या वह 'मानसिक क्रूरता' मानी जा सकती है?

25. समीर घोष के मामले में तय किए गए क़ानून के अनुसार जब हम मानसिक क्रूरता के वर्तमान मामले में आरोपों की जाँच करते हैं तो पता चलता है कि इसमें जो मानसिक क्रूरता के उदाहरण दिए गए हैं, उनका कोई आधार नहीं बनता है।

26. प्रतिपक्षी ने जो भी क्रूरता के कारण बताए हैं उनका ऐसा कोई आधार नहीं बनता जिस पर विवाह भंग की डिक्री दी जा सके। विवाह के तुरंत बाद की घटना का जो ब्यौरा प्रतिपक्षी ने दिया है, ऐसे उदाहरण इक्का-दुक्का हैं, यदि यह क्रूरता का आधार बने भी तो इस पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि 2006 से पहले की क्रूरता की घटनाओं को पक्षकारों ने condone कर दिया था इसलिए 2006 के पहले की क्रूरता की धटनाओं पर विचार नहीं किया जा सकता। क्योंकि उन्हें पक्षकारों ने condone कर दिया था क्योंकि दोनों पक्षकार 2006 तक साथ रह रहे थे। 2006 के बाद की घटनाएँ कभी-कभार घटित हुई घटनाएँ हैं जिन्हें क्रूरता नहीं माना जा सकता।

इसलिए हमारे विचार में निम्न न्यायालयों ने इस वाद के तथ्यों पर विचार नहीं किया और विवाह भंग की डिक्री पारित करने में ग़लती की है। इसलिए पति द्वारा फ़ाइल की गई विवाह-विच्छेद की याचिका ख़ारिज की जाती है और दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन संबंधी पत्नी की याचिका को हम स्वीकार करते हैं।

उपरोक्त निर्णय के अनुसार हमें आशा ही नहीं विश्वास भी है कि अब पक्षकारों को इस बात का अहसास हो सकेगा कि माँ और पिता के रूप में उनके परिवार के प्रति कर्त्तव्य और ज़िम्मेदारियाँ क्या हैं? वह अब अपना अतीत भुला कर नए सिरे से मिल-जुल कर रहना आरंभ करेंगे और यह सुनिश्चित करेंगे कि वे अपनी बेटियाँ के अपने जीवन में अच्छी तरह स्थापित कर सकें।

हमारे विचार से ऐसा मिलाप परिवारों के सभी सदस्यों के हित में होगा और इससे उनके जीवन में शांति, समरसता और आनंद का संचार होगा। इस वाद में पति सरकारी विभाग में केयरटेकर के पद पर कार्यरत् है। हम चाहते हैं कि वह अपने परिवार का भी केयरटेकर बने क्योंकि उनकी पहली ज़िम्मेदारी परिवार के प्रति है और परिवार के भरण-पोषण के लिए वह सरकार में भी काम करता रहे।

❑

सन्तोष खन्ना

# खंड-खंड समाज का 'विखंडित राग'

कहानी साहित्य की बराबर लोकप्रिय विधा बनी हुई है क्योंकि यह विधा इतनी सक्षम है या इसे इतनी सक्षम बनाया जा सकता है कि इसमें जीवन और जीवन से जुड़े प्रत्येक प्रसंग, समस्या, संवेदना को अभिव्यक्ति प्रदान की जा सकती है। अब तक कहानी ने अपनी यात्रा के दौरान अनेक पड़ाव पार किए हैं। हर पड़ाव के बाद कहानी विधा में और अधिक गहराई और विस्तार आता चला गया है। 21वीं शती के साथ ही कहानी ने जीवन के नए आयामों का उद्‌घाटन करना प्रारंभ कर दिया है। इस काल को उत्तर आधुनिक युग के नाम से भी अभिहित किया जाता है। उत्तर आधुनिकता का अर्थ जो भी रहा हो, परंतु इसमें कोई दो-राय नहीं है कि 21वीं शती के लगभग प्रथम इन दो दशकों में कहानीकारों ने युग परिस्थितियों की जटिलताओं को कहानियों में अभिव्यक्त कर उनका संज्ञान लिया हे और उनके समाधानों की ओर भी इंगित किया है। वर्तमान काल में मानवीय चेतना के विकास के साथ वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों ने जीवन में अनेक सुविधाओं के अंबार तो लगाए किंतु उन सुविधाओं के अंबार में मानव के सुख-चैन, शांति और जीवन की समरसता पर कई प्रश्न-चिह्न भी लगा दिए हैं। आज की कहानियाँ इन्हीं विडंबनाओं और विरोधाभासों से रू-ब-रू कराती और जीवन-मूल्यों के क्षरण की गाथा कह रही हैं और इनसान को सचेत कर रही हैं कि एक नए युग के सूत्रपात के लिए मानवीय मनीषा चिंतन कर सक्रिय हो जाए।

इन्हीं प्रश्नों से जूझते हुए मेरे समक्ष डॉ. उमाकांत खुबालकर का नया कहानी-संग्रह 'विखंडित राग' सामने आया जिसके अनुशीलन से यही बात सामने आई कि आज का मानव कहीं ज़बरदस्ती विरोधाभासों और वीभत्स स्थितियों में जीने के लिए अभिशप्त है। इस कहानी-संग्रह के बारे में कहानीकार ने 'अपनी बात' के अंतर्गत बताया है कि इसमें ग्यारह कहानियों को शामिल किया गया है जिनमें से दो कहानियाँ 'विखंडित राग' और 'संक्रांति' लंबी कहानियाँ हैं जिन्हें कथा के अंतर्भाव को बनाए रखने के लिए उनका कलेवर छोटा नहीं किया गया है। सभी कहानियों के बारे में लेखक का कहना है कि ''इनमें तरल मानवीय संवेदना है। देश, समाज, कार्य-क्षेत्र, में निरंतर बढ़ता हुआ आर्थिक भ्रष्टाचार, धार्मिक नैतिकता के टूटते मानदंड, वर्जनाएँ, रक्त संबंधों में बलात् संग की घटनाएँ मुझे आहत करती हैं। समकालीन परिवेश में आधुनिक नारी का चेहरा मोहरा बदला है इसलिए शोषित नारी मुखर हो कर अन्याय का प्रतिकार करने लगी है। यह किसी भी प्रगतिशील समाज के लिए क्रांति का शंखनाद है।''

इस साहसिक प्राक्कथन के संदर्भ में संग्रह की कहानियों पर दृष्टिपात किया जाए। संग्रह की पहली कहानी 'अंतहीन यात्रा' में भी कहानीकार एक वक्तव्य देता है, ''सामाजिक मूल्य और नैतिकता किस क़दर नष्ट होती जा रही है, सभ्य समाज का आदमी क्यों बर्बर होता जा रहा है कि झुग्गी-बस्ती से पाँच सौ क़दम की दूरी पर बने सार्वजनिक शौचालयों में नित-कर्म के लिए जाती बच्चियाँ भी सुरक्षित नहीं रह पाती हैं। हवस के भेड़िये किसी को भी दबोच लेते हैं।'' यह कहानी इन्हीं 'झुग्गियों' में रहने वाली सावित्री की है जो अपनी बेटी को पढ़ा-लिखा कर उसका जीवन सँवारना चाहती है। पति शराबी है पर वह पूरा जीवन स्वयं खट कर बेटी को पढ़ाती है और बेटी भी मेहनत से पढ़ती है, किंतु सावित्री की आशाओं पर वज्रपात ही होता है जब उसे कोई बताता है कि उसकी बेटी अपने बाप की उम्र के शादीशुदा ट्यूटर के साथ भाग गई है।'' अपनी 16-वर्षीय लड़की का जीवन बनाने के लिए ख़ुद को स्वाहा कर देती है। आसपास फैले अनैतिकता के वातावरण से वह अपनी बेटी को बचा नहीं पाती, कुछ नहीं कर पाती। गटर में गिरे अपने शराबी पति को घर लाने के लिए निकल पड़ती है।

कहानी-संग्रह की दूसरी कहानी 'चक्रव्यूह' एक अलग किस्म की अति संवेदनशील कहानी है। जीवन के विद्रूप विरोधाभासों से टकराना शायद आज के समाज की एक आम बात हो गई है। मानवीय मूल्यों के अवमूलन में आदमी का आदमी से कोई नाता नहीं रहा है। पर इस दर्द को इस कसक को आज केवल एक संवेदनशील मनुष्य ही महसूस कर सकता है। माहेश्वर ने अपने एक छात्र को कक्षा में ही मोबाइल पर अश्लील फ़िल्म देखते हुए पकड़ा था और उसका मोबाइल छीन दिया था, शायद वह उसे सुधारने की दृष्टि से उसे सज़ा दिलाना चाहते थे परंतु कॉलेज में कोई भी तो उनका साथ नहीं दे रहा था और ऊपर से उसे दबंग छात्र की धमकियाँ भी मिल रही थीं कि वह यथासंभव घर से बाहर न निकलते। पर एक बार जब शाम वह सैर को निकले तो उसी लड़के ने उन पर तेज़ाब फेंका और हड़बड़ाहट में वह एक वाहन से टकरा कर वहीं ढ़ेर हो गया। महेश्वर भी घबराहट में वह गिर गए थे परंतु किसी ने उन्हें स्कूटर पर बिठा दिया, वह घर पहुँचे तेज़ाब से तो वह बच गए थे परंतु उस छात्र की मौत की वजह स्वयं को मान रहे थे। इसी बेचैनी में वह टहलते हुए अपनी बेटी के कमरे के पास से गुज़रे, उन्होंने देखा कि

उनकी अपनी बेटी ही नेट पर कोई पोर्न ग्राफी वाली फ़िल्म देख रही थी और लड़की उत्तेजित और अस्त-व्यस्त हालत में थी। उन्हें लगा मानो किसी ने उनके चेहरे पर पुनः तेज़ाब फेंक दिया हो।''

'विखंडित राग' कहानी 'एक सरकारी अधिकारी महेश्वर के इर्द-गिर्द घूमती है। इसमें घटनाओं का जो ताना-बाना बुना गया है उससे ऐसा लगता है मानो कार्यालयों में महिलाएँ सेक्स ओब्जेक्ट से इतर कुछ नहीं हैं। प्रीतो जैसे वहाँ पुरुषों को लुभाने का ही काम करती हो। मनसाराम जैसे लोग इन महिलाओं को अपने जाल में फँसा लेते हैं। कहने को तो महेश्वर प्रीतों को मनसाराम के चंगुल से बचाता है और उसे महिला चेतना के बड़े लंबे-चौड़े भाषण देता है परंतु उसका अपना चरित्र मनसाराम से भी गिरा हुआ माना जाना चाहिए। उसकी अपनी पत्नी भी कभी उसकी हो कर नहीं रही, कहानी के अंत में वह वैश्या का धंधा करते हुए पाई जाती है। कहानी सेक्स और हिंसा से संसद एक सनसनीखेज सस्ती किस्म की कहानी है जिसमें सब पात्रों का चरित्र गड़बड़ाया हुआ है। कहानी पढ़ कर लगता है कि आज समाज में हर कहीं सेक्स संबंधों को ले कर बदबू फैली है; कहीं किसी का आचरण अच्छा नहीं है। वास्तव में समाज में मानो गंदगी नस-नस में समाई है। इस कहानी में सब तरफ़ अंधकार ही अंधकार है, ताज़ी हवा का झोंका कहीं नहीं, सब जगह दमघोंटू हालात हैं; हाँ, कहानी का अंत एक संवेदनशील कथन से अवश्य होता है जब महेश्वर की पत्नी उससे कहती है, ''काश! समय रहते मेरे पाँवों पर कठोर बेड़ियाँ डाल दी होती, अब मैं इतना आगे बढ़ चुकी हूँ, पीछे मुड़ कर देख नहीं सकती।'' और वह हाथ जोड़ कर महेश्वर से क्षमा माँग रही थी...।''

एक दूसरी लंबी कहानी 'संक्रांति' में वर्तमान अस्पतालों की कर-गुज़ारियों को उजागर गया है जहाँ ज़िंदा रोगी को मृत घोषित कर दिया जाता है और लाखों का बिल बना कर लाश बिल चुकाए बिना नहीं दी जाती। रोगी महिला मरी नहीं थी। अतः वह अस्पताल से दौड़ आती है और अस्पताल को सबक सिखाने के लिए उसका पुत्र अस्पताल से लाखों का मुआवजा चटक लेता है।''

इस संग्रह की सबसे अच्छी और सशक्त कहानी है 'रमैया' की। झुग्गी-झोंपड़ी की रमैया ने ब्यूटी पार्लर में काम करने के लिए ब्यूटिशियन का कोर्स ज्वाइल कर लिया था। वास्तव में पत्नी के नित नए खिलते चेहरे और नए परिधानों के कारण उसका पति मन्कू जल-भुन उठता। उसे लगता उसका किसी के साथ चक्कर है। इसी क्रम में वह उसकी अक्सर पिटाई कर देता पर एक बार तो उसने हद ही कर दी। तभी रमैया ने अपनी दबंग माँ को बुलाया और उसे मन्कू को पुलिस स्टेशन ले जा कर उसे सज़ा देने के लिए गुहार लगाई क्योंकि उसे यह भी लगता कि उसकी पिटाई के साथ किसी दिन उसकी बच्ची को भी मार डालेगा। रमैया अब आगे किसी तरह का अन्याय सहने के लिए तैयार नहीं थी। पुलिस स्टेशन में उसने बेधड़क हो कर मन्कू के विरुद्ध शिकायत लिखाई थी। पुलिस वाले इस मामले को ले कर झुग्गी-झोंपड़ियों की अन्य महिलाओं से कह रहे थे कि उनकी शिकायत भी उनके पतियों के विरुद्ध लिख जाएगी। इस तरह रमैया को न्याय का प्रतिकार करते हुए दिखाया गया है। यह घरेलू हिंसा भी रोज़-रोज़ शिकार होती महिलाओं के लिए प्रेरणा पूर्ण कहानी है। नारी जागृति का जीता-जागता उदाहरण। इसमें भाषा का भी बड़ा सशक्त ढंग से प्रयोग किया हुआ है।

'बाल्मिकी नव कथा' इस कहानी-संग्रह में एक व्यंग्यात्मक रोचक कहानी है। बाल्मिकी मिथक पर आज के संदर्भ में लिखी गई इस कहानी में परिवार वाले बाल्मिकी के पापों में सहर्ष भागीदारी के लिए तैयार हो जाते हैं क्योंकि उन्हें लूट का मोटा पैसा दिखाई देता है। बाल्मिकी अपने परिवार वालों को जेल में छोड़ हवाई टिकट से दुबई की सैर को निकल पड़ता है। कहने का तात्पर्य है कि आज किसी का कोई धर्म-ईमान नहीं बचा है।

सेरंध्री अब नहीं हारेगी? कहानी एक ऐसी छात्र की कहानी है जिसे घर में अपने भाई की हवस का शिकार होना पड़ता है और माँ को बताने पर उल्टा उसकी पिटाई हो जाती है। पिता भी उस पर बुरी नज़र ही रखता है। वह जिससे भी टकराती है, वहीं उसे मसल कर रख देता है; अखिलेश ने भी वही किया और उसको ब्लैकमेल करने लगता है तो वह उससे बचाव के लिए एक अधेड़ प्रोफ़ेसर का सहारा लेती है और वहाँ वही कहानी दोहराई जाती है। इतना पढ़-लिख कर भी उसमें इतनी हिम्मत नहीं आ पाती कि वह अपने को इन सबसे बचा सके। इन सब कहानियों में इसी तरह के नकारात्मक समाज का ही चित्रण मिलता है। यह आज के समाज के पतन को दर्शाती कहानियाँ हैं। कहानीकार के पास भाषा के नाम पर बहुत बड़ी संपदा है। बेशक चारित्रिक पतन को दर्शाने के संदर्भ में कहीं-कहीं भाषा-भदेस हो गई है परंतु यदि थोड़ी सावधानी बरती जाए तो ऐसी भाषा का बहुत ही रचनात्मक उपयोग हो सकता है। इस भाषा संभावना का उपयोग किया जाना चाहिए। लेखक को इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

**समीक्षित पुस्तक 'विखंडित राग' कहानी-संग्रह, लेखक : उमाकांत खुबालकर, प्रकाशक : भावना प्रकाशन, मूल्य : 175/- रुपए।**

❑